UNIVERSAL LIBRARY

OU_182177

UNIVERSAL LIBRARY

OUP—901—26-3-70—5,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81 6|V215 Accession No H1688

Author वाजपेयी नन्ददुलारे

Title सूर संदर्भ

This book should be returned on or before the date last marked below

सरस्वती-सिरीज़

स्थायी परामर्शदाता—डा० भगवानदास, पण्डित अमरनाथ झा, भाइ परमानंद, डा० प्राणनाथ विद्यालङ्कार, श्री सत्यदेव विद्यालङ्कार, पं० द्वारिका प्रसाद मिश्र, संत निहालसिंह, पं० लक्ष्मणनारायण गर्दे, बाबू सम्पूर्णानन्द, श्री बाबूराव विष्णुपराड़कर, पण्डित केदारनाथ भट्ट, ब्योहार राजेन्द्रसिंह, श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, श्री जैनेन्द्र कुमार, बाबू वृन्दावनलाल वर्मा, सेठ गोविन्ददास, पण्डित क्षेत्रेश चटर्जी, डा० ईश्वरीप्रसाद, डा० रमाशंकर त्रिपाठी, डा० परमात्माशरण, डा० बेनीप्रसाद, डा० रामप्रसाद त्रिपाठी, पण्डित रामनारायण मिश्र, श्री संतराम, पण्डित रामचन्द्र शर्मा, श्री महेश-प्रसाद मौलवी फाज़िल, श्री रायकृष्णदास, बाबू गोपालराम गहमरी, श्री उपेन्द्र-नाथ "अश्क", डा० ताराचंद, श्री चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार, डा० गोरखप्रसाद, डा० सत्यप्रकाश वर्मा, श्री अनुकूलचन्द्र मुकर्जी, रायसाहब पण्डित श्रीनारा-यण चतुर्वेदी, रायबहादुर बाबू श्यामसुन्दरदास, पण्डित सुमित्रानन्दन पंत, पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', पं० नन्ददुलारे वाजपेयी, पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पण्डित मोहनलाल महतो, श्रीमती महादेवी वर्मा, पण्डित अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, डा० धीरेन्द्र वर्मा, बाबू रामचन्द्र टंडन, पण्डित केशवप्रसाद मिश्र, बाबू कालिदास कपूर, इत्यादि, इत्यादि।

हिन्दी-साहित्य

'सूर'-संदर्भ

महाकवि सूरदास जी के सर्वोत्कृष्ट पदों का सविवेचन संकलन।

नन्ददुलारे वाजपेयी, एम० ए०

यदि आप अभी तक इस सिरीज के ग्राहक नहीं बने हैं, तो ग्राहक बनने में शीघ्रता कीजिए; या पुस्तक के पृष्ठभाग पर दी हुई सूची में से अपनी पसंद की पुस्तक चुनकर अपने स्थानीय पुस्तक-एजेंट से लीजिए।

सरस्वती-सिरीज़ नं० १

सूर संदर्भ

नन्ददुलारे वाजपेयी, एम० ए०

सर्वोदय साहित्य मंदिर
हुसेनीअलम रोड, हैदराबाद (दक्षिण)

प्रकाशक
इंडियन प्रेस लिमिटेड
प्रयाग

प्राक्कथन

सूरसागर के चुने हुए गीतों का यह संग्रह पाठकों के हाथ में है। इसके गुण-दोषों का विचार वे ही कर सकते हैं। मेरी इच्छा थी कि इस संग्रह के भूमिका-भाग में सूरदास जी की जीवनी, शुद्धाद्वैत-सम्प्रदाय की दार्शनिक मान्यताओं, सूरसागर की भाषा और काव्यगत विशेषताओं आदि के सम्बन्ध में कुछ लिखूँ, पर स्थानाभाव के कारण वह इच्छा स्थगित रखनी पड़ी। केवल 'सूरसागर' काव्य पर एक धारावाही दृष्टि डालने और इस संग्रह के सम्बन्ध में कतिपय आवश्यक उल्लेख कर देने भर से ही सतोष करना पड़ा। यह कार्य भी बड़ी क्षिप्रगति से किया गया है। इसमें प्रकट किये गये विचारों को पाठक मेरे निजी विचार समझें। इनमें किसी शास्त्रीय या धार्मिक विषय की चर्चा नहीं की गई है। इनमें तो काव्य के कलात्मक और भावात्मक विकास पर ही कुछ निवेदन किया गया है। जहाँ अव्यभिचारिणी भक्ति है वहाँ तो शका है ही नहीं। वहाँ तो सूरदास जी का प्रत्येक पद (अथवा अधिकाश) भगवत्साक्षात्कार का सहायक है। उस दृष्टि से तो 'सूरसागर' काव्य की समीक्षा करने की धृष्टता की ही नहीं जा सकती। वरन् उस अवस्था में तो इसे काव्य कहना भी असगत होगा। प्रस्तुत लेखक इतनी ऊँची भावना-भूमि पर नहीं है इसी लिए उसे इस काव्य पर टीका-टिप्पणी करने का साहस हो सका है। किन्तु इतना वह अपनी ओर से अवश्य कहेगा कि काव्य के प्रति सम्मान के भाव से प्रेरित होकर और उसके रहस्य को समझने की चेष्टा में ही यह साहस किया गया है। इसलिए, आशा है, उसके विचारों को पढ़कर पाठकों के हृदय में भी सम्मान और जिज्ञासा की भावना ही उत्पन्न होगी और बढ़ेगी। प्रस्तुत सग्रह से यदि इस उद्देश्य की किसी अश तक पूर्ति हो जाय तो लेखक के लिए यह बहुत बड़ा सौभाग्य होगा। उसका लक्ष्य इसी दिशा में नवीन प्रेरणा उत्पन्न करने का है।

पदों के नीचे प्रत्येक पृष्ठ पर जो शब्दार्थ अथवा वाक्यार्थ दिये गये हैं, आशा है उनसे पदों का अध्ययन करने में पाठकों को सुविधा होगी।

यह संग्रह

इस संग्रह के सम्बन्ध में हम कुछ आरम्भिक शब्द कहते हैं। सूरसागर के प्राय छ हजार पदो मे से हमे केवल पाँच सौ के लगभग पद लेने थे, यह कार्य ऊपरी दृष्टि मे बडा सरल मालूम पडता है, किन्तु वास्तव में यह सरल कार्य नही था। मूल वस्तु जितनी ही बडी होती है उसमें से छोटे अश छाँटने का काम उतना ही विवेकसाध्य हो जाता है क्योकि छाँटनेवाले को यह तो ध्यान रखना ही पडता है कि जो वस्तु छाँटकर निकाली जाय वह मूलवस्तु का अधिक से अधिक सुन्दर और प्रतिनिधि अंश हो। इसलिए जितनी ही बडी वह मूलरचना होगी और उसमे से जितना ही छोटा अश सग्रह करना होगा, उतने ही अनुपात मे सग्रहकार की जिम्मेदारी बढ जायगी और उसका कार्य कठिन हो जायगा। फिर सूरसागर केवल मुक्तक गीतों का फुटकल सग्रह नही है जिसमे एक पद्य का दूसरे से कोई सम्बन्ध न हो। उस अवस्था मे अपने इच्छानुसार पद्यो को छाँट लेने मे यह सुविधा रहती है कि पूर्वापर प्रसग अथवा पद्यो की क्रमबद्धता का कोई प्रश्न ही नही उठता। सूरसागर जहाँ एक ओर गीतिबद्ध काव्य है वहाँ दूसरी ओर वह आख्यानात्मक भी है। उसमे भागवत की सभी मुख्य कथाये सम्मिलित हैं। हमने उन सब कथाओं को सूरदास के काव्य के लिए गौण समझकर छोड दिया है किन्तु सूरसागर के दशम स्कंध की (जो स्कध समस्त ग्रथ का तीन-चौथाई से अधिक भाग है) कृष्णलीला के क्रम को यथासम्भव निबाहना आवश्यक समझा है। लीला या कथा का क्रम टूट जाने पर पाठको का शिकायत करना स्वाभाविक है। सूरसागर के अधिकाश प्रचलित संग्रहो मे यह क्रमभग देख पडता है। हमने क्रम की रक्षा करने का पूर्ण प्रयास किया है, इसलिए पाठको को कथा का आस्वाद भी मिल सकेगा। किन्तु ऐसा करने मे हमारी कठिनाई और भी बढ गई है। हमे सुन्दर-से-सुन्दर पद्य भी छाँटने थे और कथा-रक्षा का भी ध्यान रखना था। इस कारण सूर-

सागर मे वर्णित कृष्ण के बालचरित्र के अधिकांश आख्यान तो हमने रख लिये हैं और उनमे कथा-सूत्र को भी टूटने से बचाया है, पर कुछ अल्प आवश्यक आख्यान हमे छोड भी देने पडे हैं। ये अधिकतर राक्षसो के वध, कालीय-दमन, दावानल-पान आदि के रौद्र अथवा अद्भुत आख्यान थे जिनमे काव्य-सौन्दर्य विशेष परिस्फुट नही हो पाया। कृष्ण-चरित्र में उनका कोई प्रमुख स्थान है यह मै नही मानता, किन्तु यह मेरा व्यक्तिगत विचार है। इस सग्रह मे उन्हे न रख सकने का कारण काव्य-सम्बन्धी मेरी माप के साथ-साथ स्थानाभाव भी है।

जब आख्यानो को रखना हमने निर्धारित कर लिया तब उनको अधूरा रखना अथवा बीच मे कही खडित कर देना ठीक न होता। इसलिए आख्यान पूरे के पूरे रक्खे गये है। अवश्य उनका मूल का-सा विस्तार यहाँ नही किया गया, चुने हुए पद्य ही एक-एक प्रसंग के रक्खे हैं। ये चुने हुए पद्य ऐसे हैं जिन्हे काव्योत्कर्ष की दृष्टि से छाँटा गया है किन्तु जो प्रसगत: कथा-सूत्र की भी रक्षा करते हैं।

काव्य-सौन्दर्य और कथा की रमणीयता दोनों को अक्षुण्ण रखने का उद्देश्य लेकर किये गये इस सग्रह मे एक त्रुटि का रह जाना अवश्यम्भावी था। वह त्रुटि है कृष्ण के मथुरागमन के पश्चात् गोपियो के विरह और भ्रमरगीत-सम्बन्धी अत्यन्त मनोरम पदों का अधिक सख्या मे न चुना जा सकना। इन दोनो प्रसगो के यदि सभी सुन्दर गीत छाँटे जायँ तो उनके लिए कम-से-कम उतनी ही बडी एक पुस्तक की आवश्यकता होगी जितना बडा हमारा यह सग्रह है (उनका काव्य-सौन्दर्य भी इस सग्रह की अपेक्षा कम न होगा)। आशा है पाठक इस सम्बन्ध की हमारी असमर्थता को समझ लेगे और उपर्युक्त दोनो प्रसगो के जो थोडे से पद इस सग्रह मे दिये गये हैं, सम्प्रति उन्ही से सन्तोष करेगे। निकटभविष्य में सूरसागर के इन दोनो प्रसंगो का ही एक अलग सग्रह प्रकाशित करने का हमारा विचार है। इस सम्बन्ध मे हम अपने पाठको की इच्छा भी जानना चाहेंगे।

सूरसागर शृङ्गाररसप्रधान काव्य-ग्रथ है। अतः उसमे स्वभावतः कतिपय ऐसे वर्णन आगये हैं जो विद्यार्थियो के उपयुक्त नही हैं। उन

अंशो को इस संग्रह में स्थान नहीं दिया गया है। इसे सबके उपयोग की वस्तु बनाना हमारा उद्देश्य रहा है।

अब, इस संग्रह की भाषा, छन्द और लिपि-प्रणाली के सम्बन्ध मे भी हम कुछ कहेगे। किन्तु पाठक यह न समझे कि यहाँ हम सूरदास की भाषा और छन्द-रचना आदि के सम्बन्ध मे कोई विस्तृत विचार प्रकट करने जा रहे है (उसके लिए तो लम्बी जगह चाहिए)। यहाँ संक्षेप मे केवल वे थोडी बातें कहनी है जिनकी इस सग्रह के लिए अत्यधिक आवश्यकता है और जिनकी पाठको को जिज्ञासा भी होगी। पाठको में से कुछ को यह विदित होगा कि सूरसागर का सबसे प्रामाणिक संस्करण नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी, द्वारा सम्पादित कराया गया है। इसका सम्पादन एक दर्जन से अधिक हस्तलिखित प्राचीन मूल्यवान् प्रतियो के आधार पर किया गया है। आरम्भ मे यह कार्य स्व० जगन्नाथदास रत्नाकर जी ने अपने हाथो किया था किन्तु उनके देहावसान के पश्चात् यह कार्य सभा को सौंप दिया गया। सभा ने हस्तलिखित प्रतियो और प्राप्त सामग्री के आधार पर यह कार्य नये सिरे से चलाया और सम्पादन का भार मुझे दिया। सम्पादन का कार्य कई वर्ष पूर्व समाप्त हो जाने पर भी, खेद है, सभा अब तक उसे पूरा प्रकाशित नही कर सकी है।

अस्तु, उस सम्पादन-कार्य के अपने अनुभवो का लाभ मैंने इस सग्रह मे भी उठाया है और भाषा, छन्द और लिपि-सम्बन्धी उन नियमो का यहाँ भी पालन करने की चेष्टा की है जिनका पालन सभा के उक्त सस्करण मे किया गया है। उस सस्करण की इस सम्बन्ध की कुछ नवीनताओ को लेकर हिन्दी-संसार में एक हलकी-सी हलचल भी उठी थी किन्तु उसका कोई सुव्यवस्थित रूप नही दिखाई दिया। इसलिए उस समय मैंने अपनी ओर से कुछ भी लिखना अनावश्यक समझा था। अब, जब यह सग्रह निकल रहा है, और उन नवीनताओ को इसमे स्थान दिया गया है तब उनके सम्बन्ध में कुछ वक्तव्य आवश्यक हो गया है। यहाँ मै केवल उन विशेष अशो को लूँगा जिनके सम्बन्ध मे अधिक मतभेद रहा है। यहाँ किसी विवाद मे पड़ना अथवा भाषाविज्ञान की उलझनें उत्पन्न करना मेरा लक्ष्य नही है। उसके लिए यह उपयुक्त स्थल भी

नहीं। यहाँ तो केवल कुछ निर्देश पाठकों की सुविधा के लिए कर देना ही प्रयोजन है।

दो सबसे बड़ी नवीनतायें जो यहाँ बर्ती जा रही हैं वे हैं—१. 'ओ' और 'ए' के बदले 'औ' और 'ऐ' का ऐसे स्थानों में प्रयोग जैसे—गयो हुतो (जो कतिपय छपी हुई प्रतियों में मिलता है) के स्थान पर 'गयौ हुतौ' 'तो सों' के स्थान पर 'तो सौं', 'ऐसो' के स्थान पर 'ऐसौ' आदि और 'यामें' के बदले 'यामैं', 'ह्वा तें' के बदले 'ह्वा तैं' आदि। इस सम्बन्ध में हमें कहना यह है कि प्राचीन प्रतियों में 'ओ' और 'ए' की अपेक्षा 'औ' और 'ऐ' की ओर अधिक झुकाव पाया जाता है; इसलिए हमने इसे सामान्य नियम बना कर बर्ता है। शौरसेनी प्राकृत और अपभ्रंश के अधिक निकट 'औ' और 'ऐ' हैं। उनमें इनका उच्चारण और लेखन और भी उघरा हुआ है। 'औ' और 'ऐ' के स्थान पर 'अउ' और 'अइ' प्रयोग मिलते हैं यथा 'पलानिअउ' (पलान्यौ-घोड़े की जीन कसी), 'मुकुलावअइ' ('मुकुलावै'-खोले)। शौरसेनी से ही ब्रजभाषा का उद्गम हुआ है। इसलिए हम कह सकते हैं कि 'औ' और 'ऐ' न केवल ब्रजभाषा की प्रकृति के अनुकूल हैं वरन् वे 'ओ' और 'ए' की अपेक्षा अपने उद्गमस्थल (शौरसेनी प्राकृत) के अधिक निकट हैं, अतः प्राचीन भी।

२ दूसरी नवीनता है अनुस्वार और चन्द्रबिन्दु का पृथक् विभाजन और इनके प्रयोग का आधिक्य। अनुस्वार एक पूरी मात्रा है जब कि चन्द्रबिंदु मात्रारहित आनुनासिक है। इनका अन्तर बहुत ही स्पष्ट है। 'हिंसा' में अनुस्वार पूरा है जब कि 'गोसैयाँ' या आवतिँ में वह आनुनासिक-मात्र है। प्रायः लोग इन सभी स्थानों में एक-सा चिह्न ं बर्तते हैं पर यह या तो असावधानी है या क्षिप्रलेखन और मुद्रण-सम्बन्धी विवशता। प्रस्तुत संग्रह में हमने ह्रस्व वर्णों के साथ लगे हुए मात्रारहित आनुनासिक को चन्द्रबिन्दु ँ द्वारा सूचित किया है और मात्रावाले आनुनासिक को अनुस्वार ं द्वारा जैसे कंस, नद और मनहिँ, घरहिँ, तुमहिँ, आवहिँ, जाहिँ आदि। किन्तु दीर्घ वर्णों के साथ जहाँ सब स्थानों पर उच्चारणशास्त्र की दृष्टि से चन्द्रबिन्दु लगाना चाहिए था, हम अनुस्वार लगाने को विवश हुए हैं। किन्तु इससे मात्रा-सम्बन्धी कोई विकृति नहीं उत्पन्न होती जैसे 'वाकौं',

उनको" आदि के स्थान पर 'वाकौं' और 'उनकौं' छपा है जो पढ़ने में असुविधा नही उत्पन्न करता (यद्यपि शुद्ध प्रयोग 'वाको" और 'उनको" ही है)।

अब के पहले प्रचलित मुद्रित प्रतियो मे जाने पर, पाने पर आदि के अर्थ में 'गए,' 'पाए' आदि का प्रयोग होता रहा है किन्तु 'गए' और 'पाए' रूप भूतकालिक क्रिया के हैं। उनको इनसे पृथक् करने के लिए और 'जाने पर' के 'पर' अश की सूचना के लिए प्राचीन प्रतियो में अधिकाश स्थलो पर 'गऐ", 'पाऐ" या 'गएँ', 'पाएँ' रूप मिलते हैं। भाषाशास्त्र इन्ही रूपो का समर्थन करता है। इन्हे हमने ग्रहण किया है।

कुछ पुरानी प्रतियो मे 'म' कार के पूर्व वर्ण पर उच्चारण-प्रवृत्ति की दृष्टि मे अनुस्वार या चन्द्रविन्दु लगा हुआ मिलता है, जैसे 'कोमल' 'कँमल' आदि। किन्तु यह कम स्थानो पर है और इस उच्चारण-प्रवृत्ति का भाषाशास्त्र समर्थन नही करता, इसलिए यहाँ हमने प्राचीन प्रतियो के उन निर्देशो का अनुसरण नही किया।

कर्मकारक द्वितीया विभक्ति में 'उनहिँ, तिनहिँ, वाकौं, तिनकौं' आदि रूप हमने आनुनासिक रक्खे हैं। व्रजभाषा में यह विकल्प से द्वितीया मे आया है, प्राचीन प्रतियो मे भी यह अप्राप्य नहीं है। हमने इनका प्रयोग किया है। रामचरितमानस मे द्वितीया के रूप 'वाहि', 'तिनहि' आदि प्राय· अननुनासिक मिलते है। षष्ठी या सम्बन्धकारक की विभक्ति मे आनुनासिक विकार नही पाया जाता। द्वितीया, चतुर्थी, पंचमी और सप्तमी मे हम आनुनासिक बराबर पाते हैं।

षष्ठी में भी जहाँ अधिकरण या अधिष्ठान (सप्तमी) का आग्रह होता है हम कतिपय प्राचीन प्रतियों मे अनुस्वार पाते हैं जैसे—'वाकें जाइय' (उसके(घर पर) जाना चाहिए)। ऐसे आग्रहों को हमने भी स्वीकार किया है।

'उसे (स्त्री को) जाती हुई देखा' या 'उसे (स्त्री को) जाते हुए देखा' के दोनों ही प्रयोग हिन्दी मे चलते हैं। इनमे पिछला क्रियाविशेषण है और पहला सज्ञाविशेष की भाँति प्रयुक्त हुआ कृदत। क्रियाविशेषणो की यह परिपाटी संस्कृत में विरल है। संस्कृत में 'आता हुआ पुरुष' और

'आती हुई स्त्री' को ही देखते है। 'आत हुए' किसी क्रिया का विशेषण या सहचर (Adverb या Participle) है यह संस्कृत का नियम नहीं। संस्कृत मे 'गच्छन्तम् पुरुषम्' और 'गच्छन्तीम् नारीम्' के ही रूप मिलेगे, व्रजभाषा मे स्त्री और पुलिङ्ग दोनो मे ही 'आवत जात' 'आते जाते हुए' रूप मिलते हैं। हमने इन दोनो प्रयोगो को ठीक मानकर जिस स्थान पर जो मूल प्रति मे मिला है व्यवहार किया है। स्त्री जहाँ अपने लिए 'आवत जात' प्रयोग करे वहाँ उसका अर्थ करना होगा 'आते जाते हुए' अथवा 'आने जाने मे' और जहाँ 'आवति जाति' प्रयोग करे वहाँ 'आती जाती हुई' का सज्ञाविशेषण रूप मानना होगा ।

'आवति जाति' कही तो विशेषण के रूप मे (आती हुई, जाती हुई) आते हैं और कही असम्पूर्ण क्रिया के रूप मे (आती है, जाती है के अर्थ मे)। पिछले अर्थ मे बहुवचन रूपो के साथ हमने चन्द्रविन्दु का प्रयोग किया है किन्तु विशेषण रूप मे चन्द्रविन्दु का प्रयोग नही किया।

छंदो के सम्बन्ध में हमे दो बाते मुख्य रूप से कहनी है। अधिकाश छद मात्रिक हैं। इसलिए मात्राओ की गणना टेकवाली प्रथम पक्ति को छोड़कर शेष सब पक्तियो मे समान होनी चाहिए। यद्यपि सूरदास जी ने प्रायः सर्वत्र इस नियम का पालन किया है किन्तु कुछ पदो मे टेक की दूसरी पंक्ति मे चार मात्राये अधिक भी मिल जाती हैं। ये स्थल इतने कम है कि इन्हे प्रक्षिप्त मानकर रत्नाकर जी ने निकाल ही दिया है। मैने इस संस्करण मे उन अतिरिक्त मात्राओ को ज्यो का त्यो रहने दिया है।

ऐसे बहुत-से पद मिलते हैं जिनकी पक्तियो मे एक मात्रा का न्यूनाधिक्य पाया जाता है। एक मात्रा का न्यूनाधिक्य प्राचीन काव्य मे अपवाद-योग्य नही माना गया, यदि उसकी उत्तर पंक्ति मे भी एक मात्रा अधिक हो (अर्थात् दो चरणो की मात्राये समान हो)। कहीं एक मात्रा की पूर्ति के लिए ह्रस्व तुकान्त को दीर्घ कर लेने की प्रथा बर्ती गई है, जैसे रामचरितमानस की चौपाइयो मे। इतना स्वातन्त्र्य कवियो ने अपने लिए ले रक्खा था।

वर्णिक वृत्तो को भी सूरदास जी ने मात्रिक बनाकर व्यवहार किया है। कवित्त छन्द के कई प्रकार सूरसागर मे मिलते है पर शायद ही कहीं

अक्षरो की गणना ठीक बैठती हो। कारण यह है कि सूरदास जी ने उन्हे भी मात्रा के आधार पर चलाया है। मात्रा के आधार पर चलाने मे उन्होने एक बडी सुविधा देखी थी। जहाँ कही मात्रा बढे, वहाँ उसे ह्रस्व पढ लिया जाय। यह स्वातन्त्र्य उन्होने उन छदो मे अधिक बर्ता है जो मूलतः वर्णिक है किन्तु जिनमे वर्णो की गणना ठीक नही बैठती। ऐसे स्थलो में हमने उन गुरु वर्णो के नीचे जिन्हे ह्रस्व पढना चाहिए ‘ यह चिह्न लगा दिया है। इससे पाठ मे सुविधा होगी।

मात्रिक छंदो मे ‿ इस चिह्न के प्रयोग की अधिक आवश्यकता हम इसलिए नही पडी कि उनमे कवि ने इस प्रकार का स्वातन्त्र्य नही बर्ता है। किन्तु वहाँ एक दूसरे प्रकार का स्वातन्त्र्य अवश्य पाया जाता है। वह है एक ही शब्द के कई विभिन्न रूपो का प्रयोग—जैसे ‘मानौ’ शब्द का ‘मानो, मनौ, मनु’, ‘एक’ शब्द ‘एक,’ ‘इक’ आदि। इन स्थलो पर हमने सूरदास जी का आँख मूँदकर अनुसरण किया है।

अब लिपि के सम्बन्ध मे ही कुछ कहना शेष है। व्रजभाषा के उच्चारण में हिन्दी के प्रचलित व्यंजनो मे से ङ ञ, ण, श, ष, क्ष और ज्ञ का प्रयोग नही होता। संस्कृत के जानकार कुछ कवियो ने इनका प्रयोग तो किया है किन्तु पढ़ने में उनकी आवश्यकता नही-सी पडती है। ‘श्र एक नये वर्ण के रूप मे सस्कृत मे बर्ता जाता है। आधुनिक हिन्दी मे भी यह प्रचलित है। सूरसागर की प्राचीन प्रतियो मे भी इसका यही रूप मिलता है, यद्यपि वहाँ इसका उच्चारण ‘स्र’ जैसा ही होगा। प्राचीन-परम्परा को देखे तो इसे ‘श्र’ लिखना ही ठीक होगा किन्तु उच्चारण-सौन्दर्य के लिए इस सग्रह मे हमने उसका ‘स्र’ रूप कर दिया है। ‘श्र’ संस्कृत का पैंतीसवाँ व्यंजन है। हिन्दी मे भी यह इसी प्रकार लिखा जाता है। व्रजभाषा मे यद्यपि इसका उच्चारण ‘स’ और ‘र’ के योग जैसा होगा (स्वतत्र वर्ण के रूप मे नही) किन्तु लिखा यह इसी प्रकार जायगा। संस्कृत ‘क्ष’ के स्थान पर ‘च्छ’ और ‘ज्ञ’ के स्थान पर ‘ग्य’ का प्रयोग हमने इस सग्रह के लिए किया है। ङ, ञ और ण के लिए केवल अनुस्वार से काम चला लिया जाता है। ऽ का प्रयोग भी व्रजभाषा मे कम है। ‘धर्म’ को ‘धरम’ और ‘जन्म’ को ‘जनम’ लिखने की परिपाटी है

किन्तु कही कही छन्द की सुविधा के लिए और कहीं सस्कृतस्वरूप की रक्षा के लिए कवियो ने 'धर्म' और 'जन्म' के प्रयोग भी किये है। विकल्प से हमने भी दोनो प्रयोग, जहाँ जैसा मिला, रख लिये हैं।

'न' और 'म' के साथ अन्य व्यजनो का संयुक्त होना अनुस्वार-द्वारा सूचित किया जाय अथवा सयुक्त वर्णों के रूप में—'हिम्मा' और 'दम्भ' लिखा जाय या 'हिंसा' और 'दंभ'। दोनो ही रूप प्राचीन प्रतियो मे मिलते हैं। इनमे हमने कोई नियम बनाकर उसका अनुवर्तन नही किया, न हम वैसा करना उचित समझते हैं। हाँ, प्रेस की सुविधा के विचार से प्रस्तुत सग्रह मे प्राय सर्वत्र अनुस्वार का ही ऐसे स्थानो पर प्रयोग मिलेगा।

'लिये,' 'दिये,' 'आये,' 'गये' आदि रूप इसी प्रकार लिखे जायँ या 'लिए,' 'दिए,' 'आए,' 'गए' यह विषय अब भी विवादग्रस्त बना हुआ है। विवादग्रस्त यह रहेगा ही क्योंकि किसी की तालु और जीभ को कहाँ तक पकडा जा सकता है। मुँह बन्द करने का यह जमाना भी नही है। इसलिए इस विषय मे पूरी स्वतत्रता या छूट दे दी गई है। प्राचीन प्रतियो मे 'ये' की अपेक्षा 'ए' का आधिक्य अवश्य है पर कतिपय वर्णों के पश्चात् जहाँ 'ए' के उच्चारण मे असुविधा होती है 'ये' ही व्यवहार मे लाया गया है। यहाँ भी कोई निर्दिष्ट नियम काम नही करता। 'कीजियै,' 'लीजियै' 'आनियै' आदि मे 'ऐ' की अपेक्षा 'यै' ही अधिक सुकर प्रतीत होता है।

कही कही एक ही शब्द दो स्थानो पर दो तरह मे लिखा मिलता है। 'चक्रित' शब्द मे जहाँ चार मात्राएँ पढनी होंगी वहाँ यह इसी प्रकार लिखा गया है पर जहाँ 'च' को ह्रस्व पढना है वहाँ 'चकृत' लिख कर काम चलाया गया है। इसी प्रकार 'अमृत' और 'अंमृत' अथवा अम्रित' (पहला तीन मात्राओं के लिए और दूसरे दोनो चार-चार मात्राओ के लिए)।

सूरदास का काव्य

महाकवि सूरदास का काव्य, जिसके कुछ चुने हुए अंश इस संग्रह में एकत्र किये गये हैं अब तक सम्यक् रूप से हमारे अध्ययन और समीक्षण का विषय नही बन सका है। इसके जो दो मुख्य कारण हमे दीखते है उनमे पहला यह है कि सूरदास जी के प्रधान काव्यग्रंथ सूरसागर का कोई ऐसा संस्करण अब तक प्रकाशित नही हुआ जिसे सुन्दर और विशिष्ट तो क्या, संतोष-जनक भी कहा जा सके। दूसरा कारण जो पहले की अपेक्षा कही अधिक महत्त्वपूर्ण है और जो बहुत अंशो तक पहले के लिए ज़िम्मेवार भी है—वह है हिन्दी-साहित्य के आधुनिक विद्वानो की मनोवृत्ति। यह मनोवृत्ति ऐसी है जो सूरदास जी की काव्यगत विशेषताओ की परख के लिए अनुकूल नही कही जा सकती। पहले तो हम सूरदास जी के वात्सल्य और शृङ्गाररस-प्रधान काव्य को, अपनी ऊँची आदर्शवादिता के कारण, श्रेष्ठ काव्य मानने में ही हिचकते है, फिर उसे धार्मिक काव्य की श्रेणी में रखना तो हमारे लिए और भी कठिन हो जाता है। काव्य और धार्मिक काव्य दोनो ही के सम्बन्ध मे हमने जो पैमाने बना रक्खे हैं उनमे सूरदास जी की कविता किसी तरह पूरी उतरती ही नही। हमारे कहने का यह आशय नही कि हम सूरदास जी को कवि ही नही मानते, पुरानी प्रथा के अनुसार हम उनकी गणना गोस्वामी तुलसीदास जी के साथ भी कर लिया करते हैं। पर हम हृदय से यह मानने को तैयार नहीं है कि सूरदास को गोस्वामी तुलसीदास की बराबरी का पद दिया जाना चाहिए। आज तक मेरे देखने मे ऐसी एक भी समीक्षा नही आई जिसमे स्पष्ट रूप मे प्रमाण देकर सूरदास के काव्य को तुलसीदास जी के काव्य की बराबरी मे रक्खा गया हो। कही तो प्रबन्धकाव्य और मुक्तककाव्य के कृत्रिम विभेद खडे कर, कही जीवन-परिस्थितियो की व्यापकता और विस्तार की दुहाई देकर तथा कही लोकधर्म, मर्यादा और शील का नाम लेकर सूरदास जी की हेठी दिखाई गई है। इस सबके मूल में जो

स्थूल आदर्शवादी और शुष्क नीतिवादी विचारणा है वह काव्य के मूल्य निरूपण में बडी हद तक बाधक हो रही है। किन्तु इस विचारणा से यह सारा युग आक्रान्त है। सूक्ष्म किन्तु जीवन की गहराई मे स्थित स्थिर मनोवेगो का उद्घाटन और चित्रण क्या जीवन-परिस्थितियो की व्यापकता और विस्तार का बदला नही चुका लेते, लोकधर्म, मर्यादा और शील के निरूपण की अपेक्षा बाल्यकाल की निर्द्वंद्व क्रीडाओ, नटखटपन और नैसर्गिक स्नेहोद्गम का चित्राङ्कण और ग्राम्य तथा वन्य जीवन की सहज सुषमा का प्रदर्शन क्या काव्य और कला के लिए कम उपयोगी या उत्कर्ष-साधक है? प्रबन्ध और मुक्तक के बाहरी भेदो का आग्रह करने की अपेक्षा काव्य के अन्तरग गुणो—रस की प्रगाढता और उसकी मानस-प्रक्षालन-क्षमता—की परीक्षा क्या कल-रविवेचम के लिए अधिक आवश्यक नही? पर हम कब इन कार्यों मे प्रवृत्त होते है? कब तटस्थ होकर और आडे आनेवाली आदर्शवादिता को किनारे रखकर, विशुद्ध मनोवैज्ञानिक दृष्टि से काव्यचर्चा करते हे?

सूरदास जी का सूरसागर केवल काव्य ही नही है, वह धार्मिक काव्य भी है। धार्मिक ग्रंथ की दृष्टि से उसका सम्मान जन-समाज में तो है किन्तु विद्वानो के बीच अकसर इस विषय के विवाद उठा करते है कि सूरसागर की गणना धार्मिक काव्यग्रथो मे होनी चाहिए या नही? धार्मिक काव्य के सम्बन्ध मे इन विद्वानो के विचार बहुत कुछ विलक्षण हैं। अधिकाश लोगो का ऐसा ख्याल है कि त्याग, सन्यास और वैराग्य की शिक्षा देने-वाली रचनाये ही धार्मिक काव्य कहला सकती है। इस दृष्टि से हिन्दी में कबीर और दादू आदि को ही धार्मिक कवि माना जा सकता है। तुलसीदास को हम इस श्रेणी मे इसलिए स्वीकार कर लेते है कि उन्होंने नीति और मर्यादाबद्ध राम के उदात्त चरित्र का चित्रण किया है। शेषाश मे हम सूर, मीरा आदि की उन रचनाओ को भी धार्मिक काव्य कह लेते हैं जो भजनो के रूप मे प्रचलित हो गई है तथा जिनम किसी चरित्र-विशेष का उल्लेख नही। किन्तु जब श्रीकृष्ण के और गोपियो के चरित्रो की बात आती है तब हमारे विद्वान् लोग पशोपेश मे पड़ जाते हैं। वे या तो कृष्ण-गोपी-चरित्र को आत्मा परमात्मा का रूपक कहकर टाल देते

हैं या फिर विरोधी आलोचना करने मे प्रवृत्त होते हैं। 'ईश्वर की छीछा-लेदर' और 'राधा-कृष्ण' के सम्बन्ध मे निकले हुए व्यंग्यात्मक लेख हिन्दी-पत्रिकाओ मे प्रकाशित हो चुके हैं। ये दोनो ही दृष्टिकोण सूरदास जी के काव्य और उसकी कलात्मक विशेषताओ के अध्ययन मे विशेष रूप मे बाधक है। इनमे से पहला जो आरम्भ से ही सारे चरित्र को रूपक मान लेता है काव्य के द्वारा उत्पन्न किये गये चारित्रिक महत्त्व और उसके पभावो का अनुभव करने का अवकाश ही नही देता। कवियो की कला-जन्य विशेषतायें और काव्यजन्य उत्कर्ष प्रदर्शित ही नही हो पाते, क्योंकि हम तो पहले मे ही मान बैठे है कि राधा और कृष्ण मे से एक आत्मा है और दूसरा परमात्मा। जहाँ मान ही लेने की बात हो वहाँ कवि और कविकर्म की परीक्षा कैसे हो सकती है? कवि कवि मे जो अन्तर है उसका आकलन कैसे किया जा सकता है और सच तो यह है कि उस दशा मे काव्य और कला के अध्ययन की आवश्यकता ही क्या रह जाती है। इसी प्रकार दूसरा दृष्टिकोण जो केवल राधा और कृष्ण के चरित्रो का नाम सुनकर ही चौंक पड़ता है और भड़क उठता है, कवि की रचनाचातुरी और मनोभावना की सम्यक् परीक्षा के बिलकुल विपरीत है। इसे एक प्रकार का स्थूल और उजड्ड दृष्टिकोण कह सकते है, क्योंकि इसमे भी काव्यगुणो के अनुसन्धान का प्रयास नही है। केवल कथा की बाहरी रूपरेखा सुनकर जो काव्य पर आक्रमण आरम्भ कर देते है उन्हे काव्य या कला-विवेचक कौन कहेगा? कुमारी मरियम को कौमार्य मे ही ईसा मसीह उत्पन्न हुए थे। अब यदि केवल इस ऊपरी बात को ले तो कितनी अविश्वसनीय और अपवादजनक यह प्रतीत होगी। किन्तु इसी को लेकर ईसाई कलाकारो ने ससार की श्रेष्ठ कलाकृतियो—मूर्तियो और चित्रो का निर्माण किया है जिनके दर्शन मे हृदय मे पवित्र भावना का प्रवाह बह चलता है। इस अवस्था मे उस ऊपरी और अपवादजनक बात का क्या मूल्य रहा, और उसी को मुख्यता देनेवाले व्यक्तियो की क्या वक़त हो सकती है? कथा या कहानी तो बिना खराद का वह ऊबड-खाबड पत्थर है जिस पर कलाकार अपना कार्य आरम्भ करता है। मूर्ति के निर्माण हो जाने पर जब हम उस कला-वस्तु के सामने उपस्थित होते हैं तो क्या

उस पत्थर की भी हमें याद आता है जिसे काट-छाँटकर सँवारा गया और अशेष परिश्रम व्यय कर यह मूर्ति बनाई गई है ? और क्या मूर्तियाँ भी सब एक-सी ही होती हैं ? रचयिता की मनोभूमि जितनी ही प्रशस्त और परिष्कृत होगी, जितनी ही दिव्य और उदात्त कल्पनाओं का वह अधिपति होगा, साथ ही तराश के काम मे जितना ही निपुण होगा—जितनी बारीकी से जितने गहरे प्रभाव उत्पन्न करने की क्षमता रक्खेगा, मानव-हृदय के रहस्यो को समझने और तदनुकूल अपनी कलावस्तु का निर्माण करने मे वह जितना ही कुशल होगा, उसकी कला उतनी ही उदात्त और प्रशसनीय कही जायगी। कला-विवेचक का कार्य यह नही होता कि वह मूल कहानी या कच्चे माल को देखकर ही कोई धारणा बना ले अथवा अपने किन्ही व्यक्तिगत सस्कारो और प्रेरणाओ से परिचालित होकर कोई राय कायम कर ले बल्कि उसे कला-निर्माण-सम्बन्धी विशेषज्ञता प्राप्त करनी होगी, कवि-द्वारा नियोजित प्रतीको और प्रभावो का अध्ययन करना होगा और अन्तत कवि की मूल सवेदना और मनोभावना का उद्घाटन करते हुए यह बताना होगा कि वह अपने उद्देश्य मे कहाँ तक सफल अथवा असफल हुआ है।

इसी दृष्टि से हम सूरदास जी के काव्य का अध्ययन आरम्भ करेगे। पाठको को यह विदित है कि सूरसागर ही सूरदास जी का प्रमुख काव्यग्रथ और उनकी कीर्ति का स्थायी स्तम्भ है। सूरसागर मे यद्यपि श्रीमद्भागवत की कथा का अनुसरण किया गया है और भागवत के ही अनुसार इसमे भी बारह स्कन्ध रक्खे गये है किन्तु वास्तव मे सूरदास जी का मुख्य उद्देश्य श्रीकृष्ण के चरित्र का ही आलेख करना था। इसी लिए उन्होने एक चौथाई से भी कम हिस्से मे सूरसागर के ग्यारह स्कन्ध समाप्त कर शेष तीन-चौथाई से अधिक भाग एक ही (दशम) स्कन्ध को पूरा करने में लगाया है। यही दशम स्कन्ध कृष्ण-चरित्र है जिसमे कवि की काव्य-कला का सर्वाधिक विकास हुआ है। शेष स्कन्धो की रचना को हम परम्परापालन अथवा भूमिका-मात्र मान सकते हैं। प्रस्तुत संग्रह में, इसी लिए, हमने कृष्णचरित्र के ही चुने हुए अंश एकत्र किए है। कभी-कभी ऐसा देखने मे आता है कि इन ग्यारह स्कन्धो में यत्र-तत्र बिखरे

हुए आख्यानो और विचारो को लोग सूरदास जी की अपनी रचना और अपने विचार मानकर उद्धृत करते है। वास्तव मे सूरदास जी का स्वतंत्र कौशल और उनकी निजी विचारणा यदि कही व्यक्त हुई है तो एक-मात्र दशम स्कन्ध मे ही। शेष सभी स्थल अधिकाश श्रीमद्भागवत के संक्षेप-मात्र है। उनसे सूरदास का सम्बन्ध केवल अनुवादकर्त्ता का-सा है। स बात को ध्यान में न रखने के कारण अकसर ऐसे स्थलो और विचारो से सूरदास जी का सम्बन्ध जोड दिया जाता है जिनमे उनका कुछ भी वास्तविक सम्पर्क नही। इस गलतफहमी से बचने के लिए ही ऊपर का उल्लेख है।

सूरदास जी का काव्य यद्यपि अधिकतर गीतिबद्ध है पर साथ ही छोटे-छोटे कथा-प्रसग और घटनाये भी गीतो के भीतर वर्णित है। यदि हम सूरसागर के दशम स्कन्ध को ही ले तो देखेगे कि श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर उनके बाल्य और कैशोर वय के चरित्र तथा उनका मथुरागमन और कसवध तक की मुख्य घटनाये भी वहाँ सगृहीत हैं। सूरदास जी के काव्य की एक विशेषता यह है कि उसमे एक साथ ही श्रीकृष्ण के जीवन की झाँकी भी मिल जाती है और अत्यन्त मनोरम रूप और भावसृष्टि भी। प्राय मुक्तक गीत ऐसे प्रसंगो को लेकर रचे जाते हैं जिनमे कथा का कोई क्रमबद्ध सूत्र नही मिलता बल्कि कथा-अश की जानकारी प्राप्त करने के लिए हमे दूसरे विवरणो का आश्रय लेना पडता है। गीतभाग मे केवल रूप या सौन्दर्य आलेख के टुकडे सूक्ष्म मानसिक गतियाँ अथवा किसी विशेष अवसर पर उठनेवाले मनोवेगो का प्रदर्शन ही प्राप्त होता है। स्थिति-विशेष का पूरा दिग्दर्शन भी करे, घटनाक्रम का आभास भी दे और साथ ही समुन्नत कोटि के रूप-सौन्दर्य और भाव-सौन्दर्य की परिपूर्ण झलक भी दिखाते जायें; यह विशेषता हमे कवि सूरदास मे ही मिलती है। गोचारण अथवा गोवर्द्धन-धारण के प्रसंग कथात्मक हैं। किन्तु उन कथाओ को भी सजाकर सुन्दर भावगीतो मे परिणत कर दिया गया है। हम आसानी से यह भी नही समझ पाते कि कथानक के भीतर रूप-सौन्दर्य अथवा मनोगतियो के चित्र देख रहे है अथवा मनोगतियो और रूप की वर्णना के भीतर कथा का विकास देख रहे हैं। इन दोनो के सम्मिश्रण में अद्भुत सफलता सूरदास जी को मिली है।

कहीं कथनोपकथन की नियोजना करके (जैसे दानलीला मे) और कहीं कथा की पृष्ठभूमि को ही (उदाहरणार्थ वन मे विचरण, अथवा बन से ब्रज को लौटना) गीतरूप मे सज्जित करके समय, वातावरण और कथासूत्र का हवाला दे दिया गया है। सूरदास जी किसी नाटकीय स्थिति-विशेष अथवा किसी ऐकान्तिक मनोभावना-विशेष से आकर्षित होकर परिचालित नही हुए हैं। कृष्ण के सम्पूर्ण बालचरित्र पर ही वे मुग्ध हैं। फलत वे मुक्तक गीतो के अन्तर्गत सारे कथासूत्र की रक्षा करने मे समर्थ हुए हैं। अवश्य जहाँ काव्य अधिक अन्तरमुख और मनोमय हो उठा है जैसे वशी के प्रति उपालम्भ, नेत्रो के प्रति आरोप, विरह, भ्रमरगीत आदि मे वहाँ भाव ही कथारूप मे परिणत हो गए हैं, कथा की पृथक् योजना वहाँ हम नही पाते।

अब हम सूरसागर के अन्य अनावश्यक अशो को छोडकर मुख्य दशम स्कन्ध का अध्ययन आरम्भ करे। वर्षा-ऋतु भाद्र मास अष्टमी की अँधेरी आधी रात को चन्द्रमा उदय होने के समय कृष्ण का आविर्भाव होता है। सूरदास इस बात का उल्लेख करना नही भूले हैं कि आकाश चन्द्रोदय के समय भी अँधेरा है, किन्तु पृथ्वी पर नवज्योति का आगमन हुआ है। भक्तिकाव्य की परम्परा के अनुसार कृष्ण का चार भुजा धारण कर अवतार लेना सूरदास जी ने भी दिखाया है किन्तु वह चतुर्भुज मूर्ति भी शिशुस्वरूप में है और उसके पृथ्वी पर आते ही माता उन अप्राकृतिक चिह्नों को छिपा देती है। बालक कृष्ण अपने प्रकृत रूप में हमारे सामने आते है। कला की दृष्टि से यह अलौकिक आभास एक क्षणिक और उपयोगी सभ्रम की सृष्टि कर जाता है। इतने गहरे वह नही पैठना कि माधुर्य की अनुभूति में किसी प्रकार का विक्षेप पडे यद्यपि उस माधुर्य की तह में ऐश्वर्य की एक हलकी आभा भी अपना प्रभाव डाले रहती है।

असम्भव या अलौकिक की अप्राकृतिक स्मृति को और भी क्षीण करने मे सहायक होता है कृष्ण का उसी रात स्थानान्तरित होना जन्मस्थान छोडकर गोकुल पहुँचाया जाना। रास्ते मे कृष्ण की ज्योति का न छिपना और बढी हुई यमुना का कृष्ण के पैर स्पर्श करते ही रास्ता दे

देना पिता वसुदेव की प्रसन्नता और उत्साह का सूचक है। साथ ही मानव-व्यापार मे प्रकृति के सहयोग की कल्पना भी इसमे है।

असम्भव या अलौकिक की अप्राकृतिक स्मृति के स्थान पर उसकी एक सहज योजना कृष्ण के गोकुल आने से हो जाती है। वह योजना है कृष्ण के अयोनिज होने की। इसकी बडी नैसर्गिक और कलात्मक प्रतिष्ठा की जाती है। यह स्पष्ट ही इस प्रकार कि कृष्ण यशोदा के अंगजात नही हैं। योनिज सम्बन्ध न होन पर भी यशोदा के मन में परिपूर्ण पुत्रभाव स्थापित होता है। यह इस प्रकार कि कृष्ण यशोदा की अगजा के स्थानापन्न होकर आए हैं। यशोदा को इसकी सुध नही किन्तु पाठक इसे जाने रहते हैं। इस द्विविधा के द्वारा काव्य-सौन्दर्य की वृद्धि होती है और आध्यात्मिकता अपने सहज कलात्मक रूप मे प्रतिष्ठित होती है।

यशोदा का यह प्रौढ़ावस्था का पुत्र है जब कि माता यौवन की सीमा पर पहुँचकर ठहर चुकी है और निराशा के साथ नीचे ढलना आरम्भ कर रही है। इस संधिकाल का स्पर्श करना कृष्णकाव्य की एक बडी कलात्मक सूझ है। कृष्ण के प्रति अकेले और बडी साध के बाद पाये हुए पुत्र का प्यार उभर पडता है। कुमारी मरियम का पुत्र यौवन के अमबीचे आरम्भ का है और यशोदा का पुत्र यौवन के अन्तिम अवशेष क्षण का है। युवती की प्रतिमा दोनो ओर है—एक यौवन के इस पार, दूसरी उस पार। एक का पुत्र आशा के पहले और दूसरे का आशा के पश्चात् प्राप्त होता है।

कृष्ण का व्यक्तित्व कुछ अपने सहज सौन्दर्य के, कुछ माता के स्नेहातिरेक के कारण (ये दोनों ही नैसर्गिक अनुपात मे हैं इसलिए काव्य के कलात्मक विकास में सहायक भी) तथा शेष कुछ पिता के ग्रामाधिपति होने के कारण (यह एक आकस्मिक अथवा संयोगसिद्ध प्रसग है जिस पर अनावश्यक भार कवि ने कभी नही चढ़ने दिया) प्रमुख रूप से सामने आता है और अन्त तक निसर्गतः प्रमुख ही रहता है। प्रमुखता तो काव्यों के सभी नायकमात्र के लिए आवश्यक होती है किन्तु कृष्ण की प्रमुखता कुछ ऐसी विशेषताएँ रखती है जो आध्यात्मिक काव्य के लिए आवश्यक

है। इनमे सबसे पहली और मुख्य विशेषता है चरित्र के अन्तर्गत एक रहस्यात्मक पुट। रहस्यात्मक पुट तो जो भी जितना चाहे रख सकता है; किन्तु काव्य मे मनोवैज्ञानिक विश्वसनीयता भी अतिशय आवश्यक होती है। इन दोनो का सामञ्जस्य स्थापित करने मे ही धार्मिक अथवा आध्यात्मिक काव्य की सफलता है। कोरे धर्मग्रथ और उन्नत धार्मिक काव्य मे यही मुख्य अन्तर है कि एक मे हमारे विश्वास को असीम मानकर बर्ता जाता है और दूसरे मे हमारे स्वस्थ मानसिक उपकरणो के साथ न्याय किया जाता है। लक्ष्य दोनो का एक ही होता है—चरित्र की अलौकिकता की नियोजना करना, किन्तु इन दोनो की प्रणालियो मे सारा अन्तर हुआ करता है।

जिन असाधारण और क्षिप्रवेग से घटी प्रथम दिन की घटनाओं का विवरण हम दे चके हैं और साथ ही जिन मानसिक परिस्थितियो और प्रतिक्रियाओ का ऊपर उल्लेख कर चुके हैं उनके बाद कृष्णचरित्र की असाधारणता के लिए ज़मीन तैयार है, ऐसा कहा जा सकता है। देखना यह है कि वह असाधारणता अथवा रहस्यात्मकता कितने नैसर्गिक रूप से प्रस्फुटित होती है। कृष्णजन्म की बधाई बज चुकी है और विशेष उत्सव मनाये जा चुके है। अन्नप्राशन और जन्मदिन की तिथियाँ बडे समारोह के साथ सम्पन्न हुई है। दिन भर गाँव भर की भीड नद के आँगन मे रहा करती है, बालक कृष्ण की क्रीडाये देखने के लिए गोपियो का आवागमन लगा ही रहता है। नद का आँगन मणियो का बना है, खम्भे कंचन के है, इतनी अतिरिक्त सौन्दर्य-योजना आसानी से खप जाती है। ✓ तीन वर्ष बीतते ही बीतते कृष्ण आरम्भ करते है चोरी, घर के भीतर नही, बाहर समाज मे चोरी, गोपियो के घर-घर मे माखन और दही की चोरी और उत्पात। चोरी सामाजिक धारणा मे एक अपराध है, पाप है। और गोपिकाओ को रोज़-रोज़ तग करना भी कोई सदाचार नही। पर ग्राम के वातावरण और गोपियो की मन-स्थिति मे बालक कृष्ण की यह मूर्ति पाप-पुण्य निर्लिप्त दीख पडती है। चोरी करते हुए भी वे गोपियों के मोद के हेतु बनते है और अपने उत्पातों-द्वारा उनके प्रेम के अधिक निकट पहुँचते हैं। पाप-पुण्य निर्लिप्त इस

शुद्धाद्वैत की प्रतिष्ठा बिना चोरी किये कैसे होती ? अकर्म के भीतर से पवित्र मनोभावना का यह प्रसार एक रहस्य की सृष्टि करता है। यह रहस्य प्रकृत काव्यवर्णना का अग बनकर आया है, यही सूरदास की विशेषता है। भक्ति-काव्य का यह कौशल ध्यान देने योग्य है।

कृष्ण के इस स्वाभाविक नटखटपन के साथ जिस रहस्य की सृष्टि हो गई है कवि समस्त काव्य मे उसकी रक्षा और प्रवर्द्धन करता रहता है। स्वाभाविकता मे अलौकिकता का विन्यास सूरदास की मुख्य काव्यसाधना है। इस साधना मे सर्वत्र वे सफल ही हुए हो यह नही कहा जा सकता, कही-कही वे रूढियो म भी फँस गये हैं, वहाँ काव्य का मनोवैज्ञानिक सूत्र खो गया है; फिर कही-कही वे परम्पराप्राप्त 'मान' आदि के विस्तृत विवरणो मे इतने व्यस्त हो गये हैं कि उनका रहस्यात्मक पक्ष नीचे दब गया है, ऊपर आगई है कोरी और स्थूल शृङ्गारिकता। मैं इन स्थलो को सूरदास के काव्य की असफलता मानता हूँ, किन्तु सफलता के स्थल असफलता से कही अधिक है।

यहाँ मैं असफलता के कुछ हवाले दूँगा। कृष्ण के बाल्यचरित्र मे कतिपय राक्षसो और राक्षसिनियो के वध किये जाने के आख्यान मिलते हं। कतिपय विद्वानो ने इन आख्यानों मे कृष्ण की शक्तिमत्ता का निदर्शन पाया है। जब से आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल ने शक्ति, सौन्दर्य और शील की पराकाष्ठा राम के चरित्र म दिखाई ह तब से लोगो ने समझ लिया है कि य तीनो गुण काव्यचरित्रो के लिए अनिवार्य है और जहाँ कही अवसर आये उनकी ओर इगित कर देना चाहिए। यह भ्रान्ति कला की विवेचना मे अत्यधिक बाधक हो रही है। केवल शक्ति की, सौन्दर्य की अथवा शील की पराकाष्ठा दिखाना किसी काव्य का लक्ष्य नही हो सकता। काव्य का लक्ष्य तो होता है रस-विशेष की प्रतीति या अनुभूति उत्पन्न करना। इस काव्य-लक्ष्य को भूल जाने पर काव्य का समस्त कलात्मक और मनोवैज्ञानिक आधार ढह पडता है। फिर तो किसी पात्र में किन्ही गुणो की योजना कर देना—वे गुण चाहे काव्यशैली से प्रभावोत्पादक अथवा विश्वस-

नीय बनाये जा सके हों या नही--कविकर्म समझा जाने लगता है। यह कलात्मक और काव्यात्मक ह्रास का लक्षण है। कृष्ण के साथ बाल्यावस्था मे राक्षसवध की जो अलौकिक लीलाये जुडी हुई है जब तक उनका संकेतात्मक मानसिक आधार नही मिलता, तब तक काव्य की दृष्टि से उनका क्या मूल्य है? कोई यह नही कह सकता कि कृष्ण ने वास्तव मे वे कार्य नही किये थे, किन्तु काव्यकृति के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि असम्भव के आधार पर वह अपना कार्य आरम्भ न करे। प्रतीति के लिए उन मानस-सूत्रों का सग्रह आवश्यक है जो उन घटनाओं को विश्वसनीय ही नही वास्तविक भी बना सके। काव्य मे किसी चरित्र के साथ किसी गुण की पराकाष्ठा नियोजित करना पर्याप्त नही है; उसकी प्रतीति की पराकाष्ठा भी नियोजित करनी होगी।

कई राक्षस पक्षी, बछडे और गदहे और आँधी आदि का वेष बना कर आये थे, कृष्ण के द्वारा उनका पछाडा जाना स्वाभाविक रूप से चित्रित है; पर कतिपय आख्यानो मे सूरदास जी ने परम्परा का पालन भर कर दिया है, कथा को कला का स्वरूप देने की चेष्टा नही की। ब्रह्मा द्वारा बछडो के हरे जाने पर नये बछडे और गोपबालक उत्पन्न करनेवाला आख्यान, पूतनावध तथा ऐसे ही अन्य कतिपय प्रसंग अपना सम्यक् मनोवैज्ञानिक आधार सूर के काव्य मे नही पा सके हैं। इन्द्र का देवताओ-सहित कृष्ण के पास व्रज आना केवल पौराणिक चित्रण है।

इसी प्रकार सूरदास जी के द्वारा चित्रित गोपिका-मान-प्रसंग को भी लीजिए। सूरदास जी ने उसका मूलगत रहस्यात्मक आशय खूब अच्छी तरह समझा था। उन्होने आरम्भ मे बड़े सुन्दर ढंग से इस रहस्य की सूचना दी है। राधा का मान वास्तव में भ्रान्तिमूलक था। उन्होने कृष्ण के हृदय मे अपनी परछाही देखकर यह समझ लिया कि इनके हृदय मे कोई दूसरी गोपी बसती है। बस इसी कल्पना के आधार पर वे रूठ गई। कवि का प्रारम्भिक आशय यह दिखाना रहा है कि गोपियाँ राधा की ही परछाँही या प्रतिरूप हैं। कृष्ण का उनसे सम्पर्क राधा के प्रति ही सम्पर्क है। सोलह हजार एक सौ आठ गोपिकाओ से कृष्ण का सम्बन्ध दो दृष्टियों मे प्रदर्शित है। एक तो कृष्ण के प्रेम की

व्यापकता और सार्वजनीनता दिखाने के लिए (जिसमे ऐन्द्रिय भाव सस्कृत और कलात्मक उद्यमो, नृत्य, गीत आदि मे लीन हो जाय) और दूसरा कृष्णचरित्र को निसर्गत रहस्यात्मक अथवा अलौकिक स्तर पर पहुँचाने के लिए। किन्तु हुआ क्या ? हुआ यह कि काव्य मे कृष्ण का बाहुनायकत्व ही अधिक उभर उठा है। रहस्यात्मक पक्ष पिछड गया। कृष्ण एक-एक रात एक-एक गोपी के साथ व्यतीत करते और प्रात काल रक्तिम नेत्र, विचित्र वेष बनाकर दूसरी गोपिका के घर पहुँचते है। वहाँ उनका जैसा स्वागत होना चाहिए वैसा ही होता है। फलत यहाँ कृष्ण थोडी-सी निर्लज्जता भी धारण करके स्थिति का सामना करते है। एक तो इस प्रसग को इतना अनावश्यक विस्तार दे दिया गया है कि मूल भाव सँभाले नही सँभला और दूसरे इसकी वर्णना मे रहस्यात्मक व्यभिचार (सब गोपिकाओ से, जो वास्तव मे एक ही गोपी की प्रतिरूप है, समान प्रेम) ने स्थूल जारत्व का रूप धारण कर लिया है। मेरे विचार से सूरदास की कला इस प्रसंग मे उस उच्च उद्देश्य की पूर्ति नही कर सकी है जिसके लिए इस प्रसग की नियोजना की गई थी। यहाँ वह अपने उच्च लक्ष्य और समुन्नत मानसिक धरातल से स्खलित हो गई है।

इसके समाधान मे यह कहा जा सकता है कि इस प्रसग को यहाँ रखने का उद्देश्य केवल कृष्ण की इस प्रतिज्ञा की पूर्ति करना है कि जो कोई उन्हे जिस भाव से भजता है उसको वे उसी भाव में मिलते है। सब गोपिकाओ ने मिलकर उन्हे पति रूप मे भजा था; इसलिए सबके प्रति वे समान व्यवहार दिखाना चाहते है। किन्तु इस प्रतिज्ञा को इस हद तक खीचना ठीक न होगा कि काव्य मे कृष्ण व्यभिचारी और कामुक के रूप मे दिखाई देने लगें। गोपिकाओ की कामनापूर्ति बड़े सुन्दर, स्वाभाविक और रहस्यात्मक रूप मे रास-रचना द्वारा हो चुकी थी। बाह्य ऐन्द्रिय सम्बन्ध को शब्दशः पूर्णता तक पहुँचाना सूरदास जैसे उच्च कोटि के कवि का लक्ष्य नही हो सकता। मालूम होता है उस युग की बहुपत्नी प्रथा के दुष्परिणाम से सूरदास जी का काव्य भी कोरा न रह सका।

किन्तु ऐसे स्थलों को हम अपवादस्वरूप ही ले सकते हैं। मुख्यतः सूरदास जी की कला उदात्त मानसिक भूमि पर ही खड़ी है। अवश्य कई बार राधा और कृष्ण के प्रेम-प्रसंगो मे शारीरिक संयोग की भी चर्चा आई है (हमारे देश के कवियों ने प्रेम के इस परिपाक को स्वाभाविक मानकर स्वीकार किया है 'रोमांटिक' ढग से किनारा काटने की प्रथा उनकी नहीं थी) पर ये स्थल, काव्य मे अन्य स्थलो की भाँति ही प्रसगत आ गये है, इनके लिए कतिपय अतिवादी कवियो की भाँति कोई खास तैयारी सूरदास जी न नही की है।

मेरी अपनी धारणा यह अवश्य है कि सूरदास जी को ऐसे स्थल बचा जाने चाहिए थे अथवा संकेत से काम ले लेना था; क्योंकि धार्मिक काव्य के रचयिता को सामाजिक मर्यादा अधिक बरतनी होती है। फिर भी मैं यह कहूँगा कि स्नायुओ को विकृत कर देनेवाली आजकल की दीर्घसूत्री अनुरागचर्याओ की अपेक्षा सूरदास जी का उपक्रम फिर भी बुरा नही। अवश्य उन्हे प्रेम या अनुराग की यह परिणति दिखाने से कोई नही रोकता। (बल्कि यह आज के समाज के लिए किसी अंश तक उपयोगी भी है); किन्तु शिष्टाचार के विचार से ऐसे प्रसंगों को मर्यादा की सीमा में रखना था। सर्वत्र सूरदास जी ने ऐसा नही किया है, उनके समय की काव्यपरिपाटी मे, जान पड़ता है, इस प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नही था।

ऐसे ही, चीरहरण के अवसर पर कृष्ण के मुख से गोपियो से यह कहलाना कि तुम हाथ ऊपर कर जल से निकलो और अपने-अपने वस्त्र लो, सूरदास जी की सुरुचि का परिचायक नहा है। सच्चे प्रेम की अगोपनीयता प्रकट करने के लिए कवि के पास कोई दूसरा उपाय नही था, यह मै नहीं कह सकूँगा। उनके उद्देश्य के सम्बन्ध में शंका न रखते हुए भी यहाँ उनकी शैली को मै निर्दोष नही कह सकता।

पर जैसा कि मैं कह चुका हूँ, ये इने-गिने स्थल अपवादस्वरूप ही है और सूरदास जी के बृहत् काव्य पर कोई गहरा धब्बा नही लगाते। जो धब्बे हमे आज की दृष्टि से देख भी पड़ते है वे सम्भव है किसी युग-विशेष में क्षम्य भी हों। कम-से-कम यह तो कोई नहीं कह सकता कि

सूरदास जी के काव्य मे चित्रित राधा और कृष्ण का प्रेम अतिरिक्त भावात्मक उद्रेक या उबाल का द्योतक है अथवा उसमें निःशक्त कामुकता या दमित वासना के लक्षण है। यदि यह त्रुटि नही है तो और सब आरोप गौण हो जाते है। यदि अनुराग के आरम्भ में तीव्र आकर्षण, ऐकान्तिक मिलनेच्छा और सामाजिक मर्यादालघन की प्रेरणाये काम करती हैं तो प्रथम मिलन के पश्चात् तत्काल ही राधा मे प्रेमगोपन-चातुरी, वाग्विलास आदि की सामाजिक भावना जाग्रत हो जाती है जो प्रेम के स्वस्थ विकास का परिचायक है।

अब मै कृष्ण की माखन-चोरीवाले प्रसग पर छूटी हुई सूरसागर की अपनी सरसरी आलोचना के सूत्र को फिर से पकड लूं। मै कह चुका हूँ कि यह प्रसंग जहाँ एक ओर गोपियो के स्नेह की सहज धारा प्रवाहित कर देता है वही यह पाप-पुण्य निर्लिप्त कृष्ण के उपास्य और रहस्य शुद्धाद्वैत बालरूप का भी उद्‌घाटन करने मे सहायक हुआ है।

इसके पश्चात् सूरदास जी निरतर नायक (कृष्ण) का सहज और साथ ही रहस्यमय गौरव दिखाते हुए काव्य और उपासना की दोहरी आवश्यकता-पूर्त्ति करते गये है। माखन चोरी का ही वयप्राप्त स्वरूप कृष्ण की दानलीला मे दिखाई देता है। यहाँ प्रेमकलह के खुले हुए दृश्य हमे दिखाई देते हैं। कृष्ण के दधिदान (दधि पर लगनेवाला कर) माँगने पर गोपियो को कृष्ण से उलझने, वाकयुद्ध करने, धमकी देने और बदले में धमकी पाने का अवसर मिलता है। अत में एक ओर राधा और उनकी सब सखियाँ तथा दूसरी ओर कृष्ण और उनके सब सखा खुलकर आपस मे कहा-सुनी करते है। हाथा-पाई की नौबत भी आती है और अत मे गोपीदल सखा-समेत कृष्ण को भरपूर माखन-दधिदान कर, अपने सामने भोजन करा निवृत्त होता है। गोपियो के प्रेम की यह दूसरी बड़ी स्वीकृति कृष्ण ने दी है।

इसके पूर्व ही राधा का कृष्ण से परिचय समागम हो चुका है। राधा की भावी सास (यशोदा) ने उसकी माँग गूँथी और नई फरिया (बिना सिला लहँगा) भेट की है। आँचल में मेवे डाले हैं। राधा की माता को पुत्री के सामने गाली दी (विनोद-वचन कहे) और पिता को भी,

जिस पिछले का बदला वह राधा के द्वारा ही पा चुकी है। फिर उसने सूर्य की ओर आँचल पसार कर उनसे आशीर्वाद माँगा है कि नई दम्पति का कल्याण हो।

इस रमणीय प्रेम और गार्हस्थ्य प्रसग को पुन: रहस्य की आभा से अनरजित करने के लिए सूरदास जी ने समस्त कुमारिकाओ से कात्यायनी व्रत कराया और पतिरूप में कृष्ण को पाने की कामना करके कार्तिक चतुर्दशी को उपवास और रात्रि-जागरण के पश्चात् पूर्णमासी को यमुना-स्नान करते हुए दिखाया है। यही अवसर चीर-हरण का है।

भागवत् मे राधा का व्यक्तित्व परिस्फुट नही हो पाया है, इसलिए वहाँ व्यक्तिगत प्रेमालाप, वैवाहिक लोकाचार आदि का अवसर ही नही आया। बिना व्यक्तित्व के प्रेम की प्रगाढ़ता कैसे प्रकट होती ? सूरदास जी ने इस अश की सम्यक् पूर्त्ति की और फिर भागवत् की ही भाँति उपास्य कृष्ण की भी स्थापना कर दी। जिस कौशल के साथ राधा और कृष्ण के एकनिष्ठ, व्यक्तिगत, प्रगाढ़ प्रेम सम्बन्ध को सामूहिक स्वरूप सूरदास जी ने दिया है, कृष्ण की प्रेममूर्त्ति को जिस चातुरी के साथ समाजव्यापी आराधना का पात्र बना दिया है, धार्मिक काव्य के इतिहास में उसके जोड की कोई वस्तु शायद ही मिले।

कृष्ण के सौन्दर्य को राधा की अनुरक्त दृष्टि मे रहस्यमय बना दिया है, गोपियाँ जब कि कृष्ण के अंग-अंग के सौन्दर्य का वर्णन करती हैं तब राधा कहती हैं मैंने तो कृष्ण को देखा ही नही। एक अंग पर दृष्टि पडते ही आँखे भर आती हैं। सारे अंगो को देखने की कौन कहे? उनके अंगो पर कभी निगाह ही नही ठहरती। सौन्दर्य भी प्रतिक्षण और ही रूप धारण कर लेता है। यह रहस्यमय सौन्दर्यदर्शन है, जिसकी शिक्षा गोपियाँ राधा से लेती है।

राधा तो कृष्ण प्रेम की प्रयोगकर्त्री हैं। वे स्वत. प्रेम की आकर है। किन्तु सूरदास जी का प्रयोजन एक मात्र आकर से ही नहीं सिद्ध होता; वे घर-घर उस आकर का प्रसार भी चाहते है। एतदर्थ राधा की सखियों की नियोजना की गई है जो प्रयोगकर्त्री राधा के संदेश को शतश: प्रणालियों से सारी दिशाओं में फैला देती हैं। ब्रज की रज-रज मे कृष्ण-

प्रेम की सुगंधि व्याप्त हो गई है। भक्ति की बेल इसी रज में से अंकुरित होती, बढ़ती और छा जाती है।

राधा श्रीकृष्ण की भक्त हैं अथवा प्रेमिका ? सूरसागर में वे सर्वत्र कृष्ण की समानाधिकारिणी प्रेमिका हैं। उनकी श्री-शोभा पर कृष्ण मुग्ध हैं। कृष्ण के रूपलावण्य पर राधा रीझी है। क्या यह भक्ति का सम्बन्ध है? नहीं यह प्रेमी-प्रेमिका का सम्बन्ध है। किन्तु इसी प्रेमी-प्रेमिका सम्बन्ध का जब सामाजीकरण होता है, जब प्रत्येक गोपी राधा बनकर कृष्ण की आराधना करती है तब स्वभावत: भक्ति का आगमन होता है। प्रेमी कृष्ण के द्वारा ही आराध्य कृष्ण की स्थापना सूरदास जी ने जिस सुचारु कोटिक्रम मे कराई है वह काव्य-जगत् में एकदम अनोखा है।

रास वह स्थल है जहाँ प्रेमी-प्रेमिका का सम्बन्ध समाजव्यापी होकर रहस्यमयी भक्ति मे परिणत हो जाता है। श्रीकृष्ण सहस्रो गोपिकाओ के साथ रास मे सम्मिलित होते और सबकी कामना-पूर्ति करते है। यहाँ प्रेमिका की व्यक्तिगत सम्बन्ध-धारणा और तज्जन्य गर्व का निराकरण भी किया गया है। राधा यह सम्बन्ध-धारणा रखती थी, इसलिए कृष्ण कुछ काल के लिए अंतर्धान हो जाते है। जब राधा का यह गर्व दूर होता है तब कृष्ण पुन: उसके सामने आते हैं।

प्रेमी-प्रेमिका-सम्बन्ध की यह अंतिम परिणति ध्यान देने योग्य है। यह व्यक्तिगत सम्बन्ध का पूर्ण समाजीकरण है, जिसे हम भक्ति कह सकते हैं। रास मे असंख्यी गोपियो का भाग लेना, नृत्य-गीत आदि के द्वारा सबकी कामनापूर्त्ति, रहस्यमय रूप से सारी मडली का कृष्ण-केन्द्र से सम्पर्कित होना और फिर रास में कृष्ण के वंशीवादन का प्रभाव—पाषाणो का द्रवित होना, यमुना की गति का स्तंभित होना, चंद्रमा का ठहर जाना, सभी एक ही लक्ष्य की ओर इंगित करते हैं—सान्त का अनन्त मे, व्यष्टि का समष्टि मे पर्यवसान। इसलिए कृष्ण का रास अनंत कहा गया है। यह वह आदर्शस्थिति है जिसमें पूर्ण सामरस्य की स्थापना हो गई है, विक्षेप का कहीं अस्तित्व नहीं। संकीर्णता के हेतुभूत गर्व और अहकार गलित हो गये हैं, घुलकर बह गये हैं और धुलकर

निकली है दुग्धधवल शरच्चंद्रिका म सत्र ओर छिटक रही उज्ज्वल कृष्णभक्ति ।

यह न समझना चाहिए कि हम आये दिन बाजारो मे रासलीलासम्बन्धी जो भद्दे चित्र देखा करते हैं वही सूरदास का भी रास है। रास नाम तो दोनों मे समान है; किन्तु उसके अंकन मे सूरदास जी की समता करना साधारण चित्रकारो का काम नहीं। रास की वर्णना मे सूरदास जी का काव्य परिपूर्ण आध्यात्मिक ऊँचाई पर पहुँच गया है। केवल श्रीमद्भागवत की परंपरागत अनुकृति कवि ने नही की है; वरन् वास्तव मे वे अनुपम आध्यात्मिक रास से विमोहित होकर रचना करने बैठे हैं। उन्होंने रास की जो पृष्ठभूमि बनाई है जिस प्रशान्त और समुज्ज्वल वातावरण का निर्माण किया है, पुन रास की जो सज्जा, गोपियो का जैसा सघठन और कृष्ण की ओर सबकी दृष्टि का केन्द्रीकरण दिखाया है और रास की वर्णना म सगीत की तल्लीनता और नत्य की बँधी गति के साथ एक जागरूक आध्यात्मिक मूर्च्छना, अपूर्व प्रसन्नता के साथ प्रशान्ति और दृश्य के चटकीलेपन के साथ भावना की तन्मयता के जो प्रभाव उत्पन्न किये है, वे कवि की कला-कुशलता और गहन अंतर्दृष्टि के द्योतक हैं। उनके काव्य-चमत्कार की तुलना मे बाजारू चित्रो को रखना, मणियों का मल्य शाकभाजी-द्वारा आँकना ह।

रास के पश्चात् विशेषतः मान का वणन कवि न किया ह जिसके सम्बन्ध मे हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं। मान का हेतु है राधा का अन्य गोपियों से अपने को पृथक् समझना, जब कि कवि की रहस्योन्मुख कला मे वे राधा की प्रतिच्छायामात्र हैं। इस लीला का आशय इस रहस्य को मुखरित करना ही था; किन्तु वर्णन की अतिरंजना मे कवि का मूल उद्देश्य विलुप्त हो गया और राधा की भ्रान्ति के स्थान पर कृष्ण का अपराधी रूप ही उभर आया है। निश्चय ही यह कवि की भावना के अनुरूप सृष्टि नही है।

कला की दृष्टि से मानप्रसग का एक दूसरा प्रयोजन राधा के व्यक्तित्व की, विशेषतः उसके सौन्दर्य की प्रतिष्ठा करना भी हो सकता है— वह सौन्दर्य जिसका आकर्षण कृष्ण को भी विभ्रान्त कर देता है (गोपियों

की तो हस्ती ही क्या ?) और वह व्यक्तित्व जिसके सामने कृष्ण भी झुककर प्रार्थी होते हैं। किन्तु इस प्रयोजन की पूर्ति के लिए यह उपयुक्त अवसर नही कहा जा सकता। इसमे राधा का सौन्दर्याकर्षण यद्यपि प्रमुख हुआ है किन्तु उससे भी प्रमुख हो गई है उनकी गोपियों की प्रति ईर्ष्या। क्या कवि का यह उद्देश्य (ईर्ष्या को प्रमुखता देना) हो सकता है ?

उच्च कला और सौन्दर्यस्थापना की दृष्टि मे इसका समर्थन नहीं किया जा सकता, यद्यपि एक प्रकार के श्रद्धालु यह कहेंगे कि राधा की ईर्ष्या उनके अन्य गोपियों की अपेक्षा सुन्दर सज्जा करने और कृष्ण प्रेम की एकान्त अधिकारिणी बनने मे सहायक हुई है। उस समर्थक वर्ग की दलील भी हम सुन चुके है जो यह कहता है कि प्रत्येक गोपी ने जिस-जिस भाव से कृष्ण को भजा उसकी पूर्ति उन्होंने की। उन्ही मे के कुछ यह भी कहेंगे कि बिना शारीरिक संयोग के गोपियो मे उस विरह की जाग्रति दिखाना सम्भव न था जो कृष्ण के मथुरागमन के पश्चात् समस्त ब्रज मे छा गया है। इस प्रकार की विचारणा उस विशेष वर्ग की है जो तान्त्रिक रहस्यवादी पद्धतियों का अनुयायी है। मेरे विचार मे श्रेष्ठ कला और दर्शन की आवश्यकताये इससे भिन्न है।

मानमोचन के बाद ही बसंत और होली के अवसर आते है, जिनमे सामूहिक गान, वाद्य और छीना-झपटी के चटकीले और रंगीन दृश्य दिखाई देते है। इसके पश्चात् सागर-स्नान और स्नानान्तर स्वच्छ नूतन वस्त्र धारण करना और फिर पुष्पमालाओ से आच्छादित स्वर्ण-हिडोल मे गोपियो से परिवेष्टित राधा-कृष्ण की झूलती हुई ऐश्वर्यशालिनी झाँकी। यही कृष्ण की ब्रजलीला समाप्त होती है। पर्दा गिरता है। प्रशान्त ओजस्विता और प्रसन्न समादर के प्रभाव लेकर दर्शकमंडली (ब्रज की गोप-गोपियाँ) घर लौटती है।

इस अवसर पर जब ब्रज मे सब ओर सुख-समृद्धि छा गई है और हिडोल-स्थित राधा-कृष्ण की किशोर मूर्त्ति चरम आकर्षण का विषय बन चुकी है, एक ऐसी निष्क्रियता और आत्मनिद्रा की सम्भावना है जो स्वभावत: ऐसी परिस्थिति मे उत्पन्न होती है। शेषशायी भगवान् नारायण के-से

दिव्य किन्तु प्रस्थिर और गतिहीन स्वरूप का उद्घाटन करना सूरदास की कला का लक्ष्य नहीं था, नही तो वे इसी स्थान पर अपना काव्य समाप्त कर देते। पर वे सारे व्रज-मडल को चौका देते है, कृष्ण के मथुरा जाने की सूचना देकर। असम्भावित रूप से एक ऐसा झोका आता है जो सुख के प्रशान्त पारावार को दु.ख की तरंगों मे अभिभूत कर देता है। सबके सब चकित हो रहते है और कर्तव्यशून्य होकर क्षोभ के महानद मे डूबते-उतराते हैं। काव्य मे जीवन की प्रगति का यही स्वरूप है। कृष्ण का कार्य अब व्रज मे नही मथुरा मे है। इसलिए वे समस्त काम्य सम्बन्धो और प्रेमबन्धनो को दूसरे ही क्षण तोड़ देने को (हृदय पर पत्थर रखकर) तैयार हो जाते हैं।

विजय का पूर्ण विश्वास प्रतिक्षण मन मे रखते हुए भी (अर्थात् भीतर से निश्चिन्त होते हुए भी) बाहर विकट सघर्षों का सामना कृष्ण को करना पड़ता है। वे सच्चे अर्थ मे क्रान्तिकारी का आत्मविश्वास और उसी की-सी कष्टसहिष्णुता लेकर इस नये नाट्य मे प्रवेश करते है। अदने से अदना कार्य वे अपने हाथो करते है (क्योकि वे किसी समृद्ध सेना के नायक नही, नये क्रान्तिकारी हैं) और अदनी से अदनी बात सुनने को तैयार रहते हैं। सूरसागर के इस प्रसग को देखने पर इसकी अद्भुत समानता उन रचनाओ से देख पड़ती है जिनमे प्रचलित समाजव्यवस्था अथवा राजव्यवस्था के विरुद्ध क्रान्तिकारी चरित्रो की अवतारणा की गई है। रजक के साथ कृष्ण का झगड़ा, उससे कपड़े छीनकर अपने साथियों को पहनाना (बहाना यह कि राजा के दरबार मे मैले कपडे पहन कर कैसे जायँ !) पाश्चात्य क्रान्तिकारी प्रसंगो की याद दिलाता है। मल्लयुद्ध के पूर्व कूबरी का मिलना और तिलक सारना एक ऐसा विचित्र और शुभसूचक मनोवैज्ञानिक उपादान है जो आधुनिक क्रान्तिमूलक रचनाओ मे भी किसी न किसी रूप मे मिल जाता है। कंस-वध के पश्चात् कृष्ण सबसे पहले कूबरी के घर जाकर ही उसका स्वागत-सत्कार ग्रहण करते हैं। कंस के दुराचारो के भार से दबकर ही मानो वह कूबरी हो गई थी और कृष्ण के आते ही वह सुन्दर अंगोवाली हो जाती है।

यहाँ, ब्रज मे, कृष्ण कितन कोमल प्रेमतन्तुओं को छिन्न-भिन्न कर गये है, इसका कुछ अंदाज गोपियो की बिरहकातर पुकार से लग सकेगा। आज के समीक्षक को यह एतराज है कि कृष्ण के कुछ मील दूर, मथुरा जाने पर गोपियों के रोने-धोने का इतना बडा पवाँरा सूरदास ने क्यो एकत्र किया? यही नही, सूरसागर काव्य के जो सर्वोत्कृष्ट स्थल हैं—वंशी को लक्ष्य करके दिये गये सैकडों उपालभ, जिनमे सूक्ष्म प्रेमभावना भरी हुई है, नेत्रो पर किये गये अनेकानेक आरोप जिनमे रहस्यात्मक सौन्दर्य-व्यञ्जना है, इन आलोचको को व्यर्थ की मानसिक उधेडबुन और एक अतिभावुक युग का काव्यावशेष समझ पड़ता है। किन्तु यह समझ एकदम भ्रान्त है। असल मे इन्हीं वर्णनाओं में जो कवि की उत्कृष्ट तल्लीनता और सूक्ष्म मानसिक पहुँच तथा अधिकार की द्योतक हैं, कवि ने कृष्ण के रहस्यमय स्वरूप का निर्देश किया है, वह स्वरूप जो भक्ति का आधार और भक्तो का इष्ट है। भक्ति और भक्त के नाम सुनकर कोई मिथ्या धारणा नही बना लेनी चाहिए। मै कह चुका हूँ कि व्यक्तिगत प्रेम का सामूहिक सामाजिक स्वरूप ही भक्ति है और साथ ही मैं कवि सूरदास की उन काव्यचेष्टाओ की भी कुछ सूचना दे चुका हूँ जिनमे उन्होने इस समाज-व्यापिनी कृष्णभक्ति की नियोजना की है। इन्ही चेष्टाओं के सर्वश्रेष्ठ अश वे है जिन्हे उपर्युक्त आलोचक मानसिक विजृभणा कहकर टाल देना चाहते हैं। पर इस प्रकार वे टाले नही जा सकेंगे। व्यक्त सौन्दर्य की जो अव्यक्त और निगूढ़ अतर्गतियाँ कवि ने दिखाई हैं वे कृष्ण को रहस्यमय स्वरूप प्रदान करती है। इसी रहस्यमय स्वरूप मे उपास्य कृष्ण की प्रतिष्ठा होती है। जो प्रेमप्रसंग व्यक्तिगत और बाह्य घटनाओं से प्रकट है उनका उपयोग भी क्रमश. अनिर्वचनीय, रहस्यमय, सामूहिक प्रेम (भक्ति) की अभिव्यक्ति के लिए ही होता है। सूरदास की यही मुख्य काव्यसाधना है।

व्रज रहते, कृष्ण का जो प्रेम, गोपियो मे इधर-उधर बिखरा था, अब उनके मथुरा जाने पर वह छनकर एकत्र हो रहा है। गोपियो के विरहगीतो मे उसका समाजव्यापी स्वरूप धारण करना जारी है। मिलने के अवसर पर जो रहे-सहे भेद-भाव थे वे भी अब मिट गये हैं (जिन लोगो

ने यह शका की है कि सूरसागर म सोलह हजार गोपिका-सहचरियो से कृष्ण का प्रेम-सम्बन्ध क्यो दिखाया गया है ? उन्हे ऊपर के उत्तर से समाधान कर लेना चाहिए)। प्रेमभावना अपना रहस्यमय सामाजिक स्वरूप धारण कर रही है।

और जब उद्धव निर्गुण का सदेश लाते हैं और गोपियाँ भ्रमर को सम्बोधित कर उन्हे मर्मस्पर्शी उत्तर देती है तब तो रहस्य खुल ही जाता है। गोपियाँ निर्गुण ब्रह्म का तिरस्कार क्यो करती है ? क्योंकि वे जिसकी प्रेमिका या उपासिका है वह निर्गुण से क्या कम है ! निर्गुण से क्या कम सुन्दर है, क्या कम श्रेष्ठ है ! जिसको योगी योग-द्वारा समाधि साधकर प्राप्त करते है उसे ही (नामान्तर से) गोपियो ने प्रेमपरिचर्या से प्राप्त किया है। क्यो वे इसे छोडकर उसे लें ? क्या विशेषता है उसमे जो इसमे नही है ? क्या रहस्य है उसमे जो इसमे नही है ? जो विशेषण उसके साथ लगते है वे सब इसके साथ भी लगते है। यह कोई व्यक्ति कृष्ण नही; यह तो रहस्यमयी परमसत्ता, परम उपास्य ही कृष्ण है। और यही सूरदास जी की आरभिक प्रतिज्ञा सार्थक हो जाती है—

अविगत गति कछु कहत न आवै,
सब बिधि अगम बिचारहि तातै सूर सगुन पद गावै।

अविज्ञात निर्गुण के समकक्ष विज्ञात सगुण कृष्ण के रहस्यमय पद सूरदास सुनाते हैं।

सूरदास की जीवनी

सूरदास की जीवनी के सम्बन्ध मे अभी तक बहुत थोडी-सी बाते ज्ञात हो सकी है। कवि ने अपने कुछ पदो मे अपने सम्बन्ध मे थोडे-से उल्लेख किये हैं। कुछ साम्प्रदायिक किवदतियाँ भी कवि के सम्बन्ध मे चली आती हैं। इस अल्प सामग्री के आधार पर विद्वानो ने सूरदास की जीवनी का क्रम निश्चित करने का प्रयत्न किया है।

सूरदास की निश्चित जन्मतिथि ज्ञात नही है। उनकी रचनाओ मे केवल साहित्य-लहरी की रचना-तिथि ज्ञात है। साहित्य-लहरी मे एक पद आया है:—

मुनि सुनि रसन के रस लेख;
दसन गौरीनद को लिखि सुबल सवत पेख।

काव्य-परिपाटी के अनुसार इस पद का यह अर्थ निकलता है कि साहित्य-लहरी की रचना [मुनि = ७, रसन (जिसमे रस नही) = ०, रस = ६, दसन गौरीनद = १] सवत १६०७ अथवा ई० १५५१ मे हुई थी। विद्वानो का अनुमान है कि साहित्य-लहरी की रचना के समय कवि की अवस्था सरसठ वर्ष के आसपास थी। कवि ने अपनी एक अन्य रचना सूर-सारावली मे एक जगह लिखा है :—

गुरु प्रसाद होत यह दरसन, सरसठि बरस प्रवीन।

सूर-सारावली और सूर-लहरी, दोनो ही ग्रथो मे सूरसागर मे कूट-पदो का सग्रह है। इससे यह सम्भव है कि ये दोनो ग्रंथ सूरसागर के समाप्त होने के बाद लगभग एक ही साथ सकलित किये गये थे। इस तर्क के आधार पर विद्वानो ने अनुमान लगाया है कि सूरदास का जन्म सवत् १५४० अथवा ई० १४८४ में हुआ था।

सूरदास की मृत्यु-तिथि के सम्बन्ध मे भी इसी प्रकार से अनुमान लगाया गया है। यह किवदती है कि सूरदास ने अस्सी वर्ष की आयु पाई। यह किंवदती असत्य नहीं मालूम पड़ती। सूरदास पुष्टिमार्ग

के संस्थापक वल्लभाचार्य (सवत् १५३५-१५८७) के शिष्य थे। सूरदास ने स्वयं लिखा है:—

श्री वल्लभ गुरु तत्त्व सुनायो, लीला भेद बतायो।

वल्लभाचार्य के बाद उनके पुत्र विट्ठलनाथ (संवत् १५७२-१६४२) उनकी गद्दी पर बैठे। विट्ठलनाथ ने अपने पिता के चार शिष्यों की और अपने चार शिष्यों को मिलाकर 'अष्टछाप' की स्थापना की। सूरदास की गणना भी इन 'अष्टछाप' के कवियों में होती है। कवि ने स्वय लिखा है:—

[थपि गुसांई करी मेरी आठ मद्धे छाप]

पुष्टिमार्ग सम्प्रदाय में यह प्रसिद्ध है कि सूरदास की मृत्यु के समय विट्ठलनाथ उपस्थित थे*। किवदंती को सत्य मानने पर सूरदास की मृत्यु-तिथि संवत् १६२० के आसपास ठहरती है। यह तिथि ग़लत नही मालम पड़ती।

सूरदास की जीवनी के सम्बन्ध मे कुछ उल्लेख नाभादास-रचित भक्तमाल और चौरासी वैष्णवन की वार्ता मे आये हैं। इन दोनों ग्रंथों से यह पता नही चलता कि सूरदास के माता-पिता का क्या नाम था, वे कहाँ रहते थे और उनकी क्या जाति थी? जनश्रुति है कि सूरदास सारस्वत ब्राह्मण थे। उनके माता-पिता गरीब ब्राह्मण थे। भिक्षा माँगकर अपना पेट भरते थे। परन्तु साहित्य-लहरी मे जो पद † मिलता है, उसमे इससे बिलकुल विपरीत बात लिखी है।—

साहित्य-लहरी के इस पद के अनुसार सूरदास प्रसिद्ध हिंदी-कवि चदबरदाई के वंश मे उत्पन्न हुए थे। वे जाति के ब्रह्मभट्ट थे। वे सात भाई थे। सूरदास सबो मे छोटे थे। उनके छ: भाई मुसलमानो से युद्ध मे मारे गये। एक बार अंधे सूरदास कुएँ में गिर पड़े। तब श्रीकृष्ण ने अपने हाथो से उन्हें निकाला। इसके बाद सूरदास व्रज मे आकर श्रीकृष्ण का भजन करने लगे।

---

*'चौरासी वैष्णवन की वार्ता।'

† पद नम्बर ११८

बहुत-से विद्वान् इस पद को प्रक्षिप्त मानते हैं। इस पद में एक जगह लिखा है कि श्रीकृष्ण ने सूरदास को दर्शन देकर सब विद्याओं मे निपुण होने का आशीर्वाद दिया और यह कहा—

प्रबल दच्छिन विप्रकुल तें सत्रु ह्वैहैं नास।

विद्वानों का कथन है कि इस पक्ति में विप्रकुल से पेशवाओ की ओर संकेत है, जिन्होंने मुसलमानों को हराया। परतु यह घटना सूरदास के कई शताब्दी बाद की है। अतः साहित्य-लहरी के इस सपूर्ण पद को प्रक्षिप्त मानना चाहिए।

परन्तु विद्वानो का दूसरा दल इस पद को अप्रामाणिक मानने का कोई कारण नही देखता। इस दल का यह कथन है कि इस पद की कुछ पंक्तियाँ आपत्तिपूर्ण हो सकती हैं। इधर कुछ विद्वानो ने यह तर्क किया है कि इस पद की जिन पंक्तियों पर आपत्ति की जाती है उनका गलत अर्थ लगाया गया है। यहाँ 'शत्रु' से तात्पर्य मुसलमानो से नही वरन् आत्मिक शत्रुओं मे है। इस प्रकार विप्रकुल से सकेत दक्षिण के ब्राह्मण-वश मे उत्पन्न हुए वल्लभाचार्य से है, जिन्होने अपने उपदेशो से आध्यात्मिक अज्ञान का नाश किया।

इस प्रकार अभी यह प्रश्न विवादपूर्ण है कि सूरदास भाट चदबरदाई के वश मे उत्पन्न हुए थे अथवा भिक्षा-वृत्ति से पेट भरनेवाले एक गरीब सारस्वत ब्राह्मण के पुत्र थे ।

नाभादास के छप्पय से इतना ही प्रकट होता है कि सूरदास भगवद-भक्त थे और अंधे थे।

चौरासी वैष्णवन की वार्ता के अनुसार सूरदास पुष्टिमार्ग मे दीक्षित होने से पहले स्वामी हो चुके थे। गऊघाट (आगरा और मथुरा के बीच) पर अपने शिष्यो के साथ रहते थे। एक बार वल्लभाचार्य मथुरा जाते हुए गऊघाट उतरे। सूरदास प्रसिद्ध गायक थे। उनकी प्रसिद्धि सुन वल्लभाचार्य ने उन्हें भगवत्चर्चा के लिए निमन्त्रित किया। सूरदास ने वल्लभाचार्य के सामने कुछ विनय-पद गाये। वल्लभाचार्य सख्य-भक्ति के प्रचारक थे। उन्होंने सूरदास के दास-भक्ति के पदो को सुनकर कहा—'सूर है कें ऐसो घिघियात काहे को है।' सूरदास ने वल्लभाचार्य के पुष्टि

मार्ग मे दीक्षा ले ली। पुष्टिमार्ग मे दीक्षित होने के बाद सूरदास का दृष्टिकोण बदल गया। वे गोवर्धन पर्वत पर रहने लगे। वल्लभाचार्य ने सूरदास की लगन देखकर उन्हे श्रीनाथ के मदिर मे कीर्त्तन करने का काम सौप दिया। इस मदिर मे रहकर ही सूरदास ने अपने अधिकाश पदो की रचना की।

सूरदास के सम्बन्ध मे कुछ जनश्रुतियाँ प्रचलित है, जिन्हे विद्वानो ने निराधार बताया है। यह किवदती है कि सूरदास अकबर के दरबार के प्रसिद्ध गवैये बाबा रामदास के पुत्र थे और अपने पिता के साथ अकबर के दरबार मे गाने जाया करते थे। विद्वानो का मत है कि ये सूरदास दूसरे थे, सूरसागर के रचयिता सूरदास नही। इसी प्रकार एक दूसरी किवदती यह है कि अकबर ने सूरदास को मिलने के लिए इलाहाबाद बुलाया। विद्वानो का मत है कि ये सूरदास भी कोई दूसरे सूरदास होगे, सूरसागर के रचयिता सूरदास नही।

सूरदास की जीवनी के सम्बन्ध मे एक बड़ा मनोरजक वाद-विवाद इस विषय को लेकर हुआ है कि क्या सूरदास जन्म मे अधे थे, अथवा बाद में अधे हो गये? सूरदास की रचनाओ मे प्रकृति का और मनुष्य के भावो के उतार-चढाव का जैसा सूक्ष्म चित्रण है, उसे देखकर यह कहने का साहस नही होता कि सूरदास ने बिना अपनी आँखो से देखे केवल कल्पना से यह सब लिखा है। अधिकांश विद्वानो का झुकाव इस मत की ओर है कि सूरदास जन्म से अंधे नही थे, बाद में अंधे हो गये। इस कथन की पुष्टि में सूरदास के ग्रंथो मे कोई साक्ष्य नही मिलता। परन्तु चौरासी वैष्णवन की वार्ता मे एक जगह लिखा है—

सूरदास जी श्री आचार्य्य जी महाप्रभून को दर्शन करि के आगे आय बैठे।

इन पक्तियो से यह ध्वनि निकलती है कि सूरदास उस समय तक अधे नही हुए थे, इसी लिए महाप्रभु के दर्शन कर, आगे बैठने की बात कही गई है।

सूरदास ने काफी लम्बी उम्र पाई थी। उनकी मृत्यु व्रज-प्रदेश के गाँव पारसोली मे हुई।

प्रस्तावना

अबिगत गति कछु कहत न आवै।
ज्यों गूंगे मीठे फल कौ रस अतरगत ही भावै।
परम स्वाद सबहीं सु निरतर अमित तोष उपजावै।
मन बानी कौ अगम अगोचर सो जानै जो पावै।
रूप रेख गुन जाति जुगति बिनु निरालंब मन धावै।
सब बिधि अगम बिचारहिं तातें सूर सगुन पद गावै ॥१॥

१. अबिगत = जो प्रकट नहीं है। जुगुति = युक्ति, उपाय।
अगम बिचारहिं = विचार में न आनेवाला।

बंदना

चरन कमल बंदौ हरि राइ।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै अंधे कौ सब कछु दरसाइ।
बहिरौ सुनै मूक पुनि बोलै रंक चलै सिर छत्र धराइ।
सूरदास स्वामी करुनामय बार बार बंदौ तिहि पाइ॥ २॥

श्री कृष्ण-जन्म

कमल नयन ससि बदन मनोहर देखिअ हो पति अति बिचित्र गति।
स्याम सुभग तन पीत बसन दुति उर बाने मोहै अद्भुत अति।
नख मनि मुकुट प्रभा अति उदित चितै चकित उनमान न आवति।
अति प्रकास निसि बिमल तिमिर छुटि कर मलि मलि मो पतिहिं जगावति।
दरसन सुखी दुखी अति सोचति पटसुत सोक सुरति उर आवति।
सूरदास प्रभु लेहु पराकृत भुज के आकृत चिह्न दुरावति॥ ३॥

गोकुल-प्रस्थान

हो पिय सो उपाय कछु कीजै।
जेहि तेहि बिधि दुराइ यह बालक राखि कंस सौं लीजै।
मनसा बाचा कहत कर्मना नृपतिहि नाहि पतीजै।
बुधि बल छल कल कैसैहूँ करि काढि अनत लै दीजै।
नाहिंन इतनौ भाग जु यह रस नित लोचन पुट पीजै।
सुनहु सूर ऐसे सुत कौ मुख निरखि निरखि जग जीजै॥ ४॥

---

३ बाने = चिह्न। उनमान न आवति = निश्चय नहीं कर पाती।
सुरति = याद। लेहु पराकृत = प्राकृतिक रूप धारण करो।
४ पतीजै = विश्वास करना चाहिए।

अँधियारी भादौ की राति।
बालक कौ बसुदेव देवकी पठै पठै पछिताति।
बीच नदी घन गरजत बरषत दामिनि कौंधति जाति।
बैठत उठत सेज पौंवरि मैं कंस डरनि अकुलाति।
गोकुल बाजत सुनी बधाई लोगनि हेरि सिहाति।
सूरदास आनद नंद कैं देत कनक नग पाँति॥ ५॥

देवताओं का हर्ष

आनंदे आनद बढ्यो अति।
देवनि दिवि दुंदुभी बजाई सुनि मथुरा प्रगटे जादवपति।
बिद्याधर किन्नरी कंठधर उपजावत अनुराग अमित अति।
गावत गगन धरनि धुनि सुनियत गरजत घन तेहिं काल जतन जति।
बरषत सुमन सुदेस सूर सुर जयजयकार करत मानत रति
सिव बिरंचि इंद्रादि सनक मुनि फूले मुख न समात मुदित मति॥ ६॥

गोकुल में प्रकट होना

गोकुल प्रगट भए हरि आइ।
अमर उधारन असुर सँहारन अंतरजामी त्रिभवन राइ।
माथे पर धरि बसुदेव ल्याए नंद महर घर गए पहुँचाइ।
जागी महरि पुत्र मुख देखत पुलक अंग उर में न समाइ।
गदगद कंठ बोल नहिं आवै हरषवंत ह्वै नंद बुलाइ।
आवहु कंत देव परसन भए पुत्र भयौ मुख देखौ धाइ।
दौरि नंद गए, सुत मुख देख्यौ, सो सोभा सुख बरनि न जाइ।
सूरदास पहिलें यह माँग्यौ दूध पियावन जसुमति माइ॥ ७॥

---

५ पौंवरि = पौर; सूतिकागृह।
६. कंठधर = गायक। जतन जति = यत्न करके।
७. महर = ग्वालों की एक उपाधि।

जागी महरि पुत्र मुख देख्यौ आनँद तूर बजाइ।
कंचन कलस हेम द्विज पूजा चंदन भवन लिपाइ।
दिन दस ही मैं बरषे कुसुमनि फूलनि गोकुल छाइ।
नंद कहै इच्छा सब पूजी मन बांछित फल पाइ।
आनँद भरे करत कौतूहल उदित मुदित नर नारी।
निरभय भए निसान बजावत देत निसंकै गारी।
नाचत महर मुदित मन कीन्हे ग्वाल बजावत तारी।
सूरदास प्रभु गोकुल प्रगटे मथुरा-गर्ब-प्रहारी ॥ ८ ॥

आजु बन कोऊ वै जनि जाइ।
सबै गाइ बछरा समेत सब आनहु चित्र बनाइ।
ढोटा है रे भयौ महरि कै कहत सुनाइ सुनाइ।
सबहि घोष मै भयौ कोलाहल आनँद उर न समाइ।
कत हौ गहर करत रे भैया बेगि चलौ उठि धाइ।
अपने अपने मन कौ चीत्यौ नैननि देखौ आइ।
एक फिरत दधि दूब बँधावत एक रहत गहि पाइ।
एक परसपर करत बधाई एक उठत हँसि गाइ।
तरुन किसोर बृद्ध अरु बालक बैठे चौगुनैं चाइ।
सूरदास सब प्रेम मगन भए गनत न राजा राइ ॥ ९ ॥

हो एक बात नई सुनि आई।
महरि जसोदा ढोटा जायौ घर घर होति बधाई।
द्वारें भीर गोप गोपिनि की महिमा बरनि न जाई।
अति आनंद होत गोकुल मे रतन भूमि सब छाई।

---

८ तूर = तुरही, एक बाद्य। कौतूहल = कौतुक, खिलवाड। निसान = नगाड़े।

९ घोष = अहीरो की बस्ती। गहर = विलम्ब, देर। गनत न राजा राइ = किसी को कुछ समझते नही।

नाचत तरुन वृद्ध अरु बालक गोरस कीच मचाई।
सूरदास स्वामी सुखसागर सुंदर स्याम कन्हाई ॥ १० ॥

सखी री काहेकें गहरु लगावति ?
सुत कौ जनम जसोदा कें गृह ता लगि तुमहिं बुलावति।
कनक थार भरि लै दधि रोचन बेगि चलौ मिलि गावति।
साँचहुँ सुत भयौ नँदनायक कै हौ नाहिंन बौरावति।
आनँद उर अंचल न सँभारति सीस सुमन बरषावति।
सूरदास सोभा तेहिं अवसर जहाँ तहाँ तैं आवति ॥ ११ ॥

आजु नंद के द्वारें भीर।
एक आवत एक जात बिदा ह्वै एक ठाढे मंदिर कें तीर।
कोउ केसर कौ तिलक बनावत कोऊ पहिरत कंचुकि चीर।
एकनि कौ दै दान समरपत एकनि कौ पहिरावत चीर।
एकनि कौ भूषन पाटंबर एकनि कौ जु देत नग हीर।
एकनि कौ पुहुपनि की माला एकनि कौ चंदन घसि नीर।
एकनि कौ तुलसी की माला एकनि कौ राखत दै धीर।
सूर स्याम घनस्याम सनेही धन्य जसोदा पुन्य सरीर ॥ १२ ॥

सोभा सिंधु न अंत रही री।
नंद भवन भरि पूरि उमँगि चलि ब्रज की बीथिनि फिरति बही री।
देखी जाइ आजु गोकुल मैं घर घर बेंचति फिरति दही री।
कहँ लगि कहौं बनाइ बहुत बिधि कहत न मुख सहसहुँ निबही री।

---

११ बौरावति = पागल बनाना, धोखा देना। जहाँ तहाँ तै = चारों ओर से।

१२ मंदिर = घर। पहिरावत चीर = वस्त्र दान करते है। राखत है धीर = मन बँधाते हैं।

१३ बीथिनि = गलियों मे। निबही = पूरी हुई।

जसुमति उदर अगाध उदधि तैं उपजी ऐसी सबनि कही री।
सूर स्याम प्रभु इन्द्रनील मनि ब्रजबनिता उर लाइ गुही री ॥१३॥

आजु तो बधाइ बाजै मंदिर महर के।
फूले फिरैं गोपी ग्वाल ठहर ठहर के ॥
फूली धेनु फूले धाम फूली गोपी अंग अंग फूले फरे तरुवर आनँद लहर के।
फूले बंदीजन द्वारे फूले जु बँदनवारे फूले जहाँ जोइ सोइ गोकुल महर के।
फूले फिरैं जादौकुल आनँद समूल मूल अंकुरित पुन्य फूले पिछले पहर के।
उमँगे जमुना-जल प्रफुलित कंज पुंज गरजत कारे भारे जूथ जलधर के।
नृत्यत मदन फूले फूली रति अंग अंग मन के मनोज फूले हिय हलधर के।
फूले द्विज संत वेद मिटि गयौ कंस खेद गावत बधाई सूर भीतर बहर के।
फूली है जसोदा रानी सुत जायो सारंगपानी भूपति उदार फूले भाग फरे
घर के ॥ १४ ॥

पालने पर झूलना

जसोदा हरि पालनैं झुलावै।
हलरावै दुलराइ मल्हावै जोइ सोइ कछु गावै।
मेरे लाल कौ आउ निंदरिया काहै न आनि सुवावै।
तू काहैं न बेगि सी आवै तोकौ कान्ह बुलावै।
कबहुँ पलक हरि मूँदि लेत हैं कबहुँ अधर फरकावै।
सोवत जानि मौन ह्वै ह्वै रहि करि करि सैन बतावै।
इहिं अंतर अकुलाइ उठे हरि जसुमति मधुरै गावै।
जो सुख सूर अमर मुनि दुरलभ सो नँदभामिनि पावै ॥ १५ ॥

---

१३. इन्द्रनील = नीलम। गुही = गुथा है।
१४ ठहर ठहर = स्थान स्थान। जोइ सोइ = सभी। पिछले पहर के = पूर्व समय के। मन के मनोज = हृदय की इच्छायें।
१५. मल्हावै = चुमकारती है। जोइ सोइ = जो मन में आया। मधुर = धीरे धीरे।

पालने स्याम हलावति जननी ।
अति अनुराग परसपर गावति प्रफुलित मगन मुदित नँदघरनी ।
उमँगि उमँगि प्रभु भुजा पसारत हरषि जसोमति अंकम भरनी ।
सूरदास प्रभु मुदित जसोदा पूरन भई पुरातन करनी ।। १६ ।।

हरष नंद टेरत महरि ।
आइ सुत मुख देखि आतुर डारि दै दधि डहरि ।
मथति दधि जसुमति मथानी धुनि रही घर घहरि ।
स्रवन सुनति न महरि बातैं जहाँ तहँ गइ चहरि ।
यह सुनत तब मातु धाई गिरे जाने झहरि ।
हँसत नँद मुख देखि धीरज तब कर्यौ ज्यौ ठहरि ।
स्याम उलटे परे देखे बढ़ी सोभा लहरि ।
सूर प्रभु कर सेज टेकत कबहुँ टेकत ढहरि ।। १७ ।।

पालने पर उलटना

महरि मुदित उलटाइ कै मुख चूमन लागी ।
चिरु जीवौ मेरो लाडिलौ मैं भई सभागी ।
एक पाख त्रैमास कौ मेरौ भयौ कन्हाई ।
पट करानि उलटे परे मैं करौं बधाई ।
नंदघरनि आनँद भरी बोलीं ब्रजनारी ।
यह सुख सुनि आईं सबै सूरज बलिहारी ।। १८ ।।

---

१६. अंकम = गोद । पुरातन करनी = पिछले कर्म ।

१७ टेरत = बुलाते हैं । डहरि = घड़ा, मटका । चहरि = आवाज ।
ज्यौ ठहरि = धैर्य धारण करके ।

१८ पट करानि = हाथों के बल ।

माता की साध

नंदघरनि आनँद भरी सुत स्याम खिलावै।
कबहुँ घुटुरवनि चलहिंगे कहि बिधिहिं मनावै।
कबहुँ दँतुलि द्वै दूध की देखौं इन नैननि।
कबहुँ कमल-मुख बोलिहै सुनिहौं उन बैननि।
चूमति कर पग अधर मुख लटकति लट चूमति।
कहा बरनि सूरज कहै कहँ पावै सो मति ॥१९॥

सुत मुख देखि जसोदा फूली।
हरषित देखि दूध की दँतियाँ प्रेम मगन तन की सुधि भूली।
बाहिर तैं तब नंद बुलाए देखौ धौं सुंदर सुखदाइ।
तनक तनक-सी दूध की दँतियाँ देखौ नैन सुफल करौ आइ।
आनँद सहित महर तब आए मुख चितवत दोउ नैन अघाइ।
सूर स्याम किलकत द्विज देख्यौ मनौ कमल पर बीजु जमाइ ॥२०॥

अन्नप्राशन

आजु कान्ह करिहै अनप्रासन।
मनि कंचन के थार भराए भाँति भाँति के बासन।
नंद घरनि सब बधू बुलाईं जे जे अपनी जाति।
कोउ जिवनार करति कोउ घृतपक षटरस के बहु भाँति।
बहुत प्रकार किए सब व्यंजन बरन बरन मिष्टान।
अति उज्जल कोमल सुठि सुंदर महरि देखि मन मान।

---

१९ घुटुरवनि = घुटने के सहारे।
२० द्विज = दाँत। बीजु = विद्युत्। जमाइ = जडी हुई है।
२१ बासन = बर्तन। जिवनार = रसोई।

जसुमति नंदहिं बोलि कह्यौ तब महर बुलावहु पाँति।
आपु गए नँद सकल महर घर लै आए सब ग्याति।
आदर करि बैठाइ सबनि कौ भीतर गए नँदराइ।
जसुमति उबटि न्हवाइ कान्ह कौ पटभूषन पहिराइ।
तन झिंगुली सिर लाल चौतनी कर चूरा दुहुँ पाइ।
बार बार मुख निरखि जसोदा पुनि पुनि लेति बलाइ।
घरी जानि सुत मुख जुठरावन नँद बैठे लै गोद।
महर बोलि बैठारि मंडली आनँद करत बिनोद।
कनक थार लै खीर धरी भरि तापर घृत मधु नाइ।
नँद लै लै हरि मुख जुठरावत नारि उठी सब गाइ।
षटरस के परकार जहाँ लगि लै लै अधर छुवावत।
बिस्वंभर जगदीस जगतगुरु परसत मुख करुवावत।
तनक तनक जल अधर पोंछि कै जसुमति पै पहुँचाए।
हरषवंत जुवती सब लै लै मुख चूमतिं उर लाए।
महर गोप सबही मिलि बैठे पनवारे परुसाए।
भोजन करत अधिक रुचि उपजी जो जेहिकैं मन भाए।
इहिं बिधि सुख बिलसत ब्रजबासी धनि गोकुल नर नारी।
नंद सुवन की या छबि ऊपर सूरदास बलिहारी॥२१॥

हरि कौ मुख माइ मोहि अनुदिन अति भावै।
चितवत चित नैननि की मति गति बिसरावै।

---

२१. पाँति = पंगत। ग्याति = जाति के लोग। उबटि = उबटन लगाकर। झिंगुली = कुर्ता। चौतनी = बंद या बटन लगी हुई टोपी। चूरा = चूड़ा या कंकण जो हाथ मे पहनते हैं। पैरों मे पहनने का भी एक आभूषण, कड़ा। करुवावत = कड़ुवा लगने की मुखाकृति। पनवारे = पत्तल जिनमे खाद्य पदार्थ परोसते -

ललना लै लै उछंग अधिक लोभ लागैं ।
निरखतिं निदरतिं निमेष करत ओट आगैं ।
सोभित सु कपोल अधर अल्प अल्प दसना ।
किलकि किलकि बैन कहत मोहन मृदु रसना ।
नासा लोचन बिसाल संतत सुखकारी ।
सूरदास धन्य भाग देखतिं ब्रज-नारी ।।२२।।

वर्षगाँठ

आजु भोर तमचुर की रोल ।
गोकुल में आनंद होत है मंगल धुनि महराने टोल ।
फूले फिरत नंद अति सुख भयौ हरषि मँगावत फूल तमोल ।
फूली फिरति जसोदा घर घर उबटि कान्ह अन्हवाइ अमोल ।
तनक बदन दोउ तनक तनक कर तनक चरन पोंछति पट झोल ।
कान्ह गरें सोहै कँठमाला अंग अभूषन अँगुरिनि गोल ।
सिर चौतनी डिठौना दीन्हे आँखि आँजि पहिराइ निचोल ।
स्याम करत माता सौ झगरो अटपटात कलबल कर बोल ।
दोउ कपोल गहि कै मुख चूमति बरष दिवस कहि करति कलोल ।
सूर स्याम ब्रज जन मन मोहन बरषगाँठि कौ डोरा खोल ।।२३।।

---

२२ उछंग = गोद । निमेष = पलक लेना । ओट आगैं = सामने से छिपाना । नासा = नाक ।

२३ तमचुर की रोल = मुर्गों की ध्वनि । महराने टोल = अहीरों के टोले या मुहल्ले में । तमोल = पान । झोल = वस्त्र, अँगोछा । निचोल = वस्त्र । डोरा खोल = कमर में बाँधा गया डोरा खोलती है, नया पहनाती है ।

नंद धाम खेलत हरि डोलत ।
जसुमति करति रसोई भीतर आपुन किलकत बोलत ।
टेरि उठी जसुमति मोहन कौ आवहु घुटुरुनि धाइ ।
बैन सुनत माता पहिचानी चले घुटुरुवनि पाइ ।
लै उठाइ अचल गहि पोंछे धूरि भरी सब देह ।
सूरज प्रभु जसुमति रज झारति कहाँ भरी यह खेह ? २८॥

सिखवत चलन जसोदा मैया ।
अरबराइ कर पानि गहावति डगमगाइ धरनी धरै पैया ।
कबहुँक सुंदर बदन बिलोकति उर आनँद भरि लेति बलैया ।
कबहुँक बल कौ टेरि बुलावति इहि आँगन खेलौ दोउ भैया ।
कबहुँक कुल देवता मनावति चिरु जीवी मेरौ बाल कन्हैया ।
सूरदास प्रभु सब सुखदायक अति प्रताप बालक नँदरैया ॥२९॥

आँगन खेलें नंद के नंदा । जदुकुल-कुमुद सुखद चारु चंदा ।
संग संग बल मोहन सोहैं । सिसु भूषन सब कौ मन मोहैं ।
तन दुति मोर चंद्र जिमि झलकै । उमँगि उमँगि अँग अँग छबि छलकै ।
कटि किंकिनि पग नूपुर बाजैं । पंकज पानि पहुँचिया राजैं ।
कठुला कंठ बघनहा नीके । नयन सरोज मयन सरसी के ।
लटकन ललित ललाट लटूरी । दमकति द्वै द्वै दँतियाँ रूरी ।
मुनि मन हरत मंजु मसि बिंदा । ललित बदन बल बाल गोबिंदा ।

---

२८. खेह = धूल ।

२९. अरबराइ गहावति = चलने में लटपटाते हैं तब माता हाथ पकड़ाती हैं ।

३० नयन . सरसी के = नेत्र मानो काम सरोवर के कमल हैं । लटूरी = बालों की लट । रूरी = सुन्दर । मसि बिंदा = माथे पर लगा हुआ काजल-बिंदु ।

कुलही चित्र बिचित्र झँगूली। निरखि जसोदा रोहिनि फूली।
गहि मनि खंभ डिभ डग डोलै। कलबल बचन तोतरे बोलै।
निरखत छबि झाँकत प्रतिबिंबै। देत परम सुख पितु अरु अंबै।
ब्रजजन देखत हिय हुलसाने। सूर स्याम महिमा को जानै ॥३०॥

गहे अँगुरिया तात की नँद चलन सिखावत।
अरबराइ गिरि परत है कर टेकि उठावत।
बार बार बकि स्याम सौं कछु बोल बकावत।
दुहुँधा द्वै दँतुली भई अति मुख छबि पावत।
कबहुँ कान्ह कर छाँडि नँद पग द्वैक रिगावत।
कबहुँ धरनि पर बैठि कै मन मैं कछु गावत।
कबहुँ उलटि चलै धाम कौं घुटुरुनि करि धावत।
सूर स्याम मुख देखि महर मन हरष बढ़ावत ॥३१॥

कान्ह चलत पग द्वै द्वै धरनी।
जो मन मैं अभिलाष करत ही सो देखति नँद घरनी।
रुनुक झुनुक नूपुर बाजत पग धुनि अति ही मन हरनी।
बैठि जात पुनि उठत तुरत ही सो छबि जाइ न बरनी।
ब्रज जुवती सब देखि थकित भई सुंदरता की सरनी।
चिरु जीवौ जसुदा को नंदन सूरदास कौं तरनी ॥३२॥

आँगन स्याम नचावई जसुमति नँदरानी।
तारी दै दै गावई मधुरी मृदु बानी।

---

३०. कुलही = कनटोप। डिभ = बहुत छोटे बच्चे। कलबल = अस्पष्ट।
३१ दुहुँधा = ऊपर नीचे, दोनो ओर। रिगावत = रगाते, चलाते हैं।
३२ सरनी = मार्ग। तरनी = पार ले जानेवाली नाका।

पायनि नूपुर बाजई कटि किंकिनि कूजै।
नन्ही एड़ियन अरुनता फलबिंब न पूजै।
जसुमति गान स्रवन सुनि तब आपु न गावै।
तारी बजावत देखई पुनि तारी बजावै।
केहरि नख उर पर सुभग सुठि सोभाकारी
मनौ स्याम घन मध्य में नव ससि उजियारी
गभुआरे सिर केस हैं ते बाँधि सँवारे।
लटकन लटकै भाल पर बिधु मधि गन तारे
कठुला कंठ चिबुक तरे मुख हसनि बिराजै।
खंजन मीन सुक आनि कै मनौ परे दुराजै।
जसुमति सुतहिं नचावई छबि देखति जिय तैं।
सूरदास प्रभु स्याम के सुख टरत न हिय तैं ॥३३॥

गोपियों का हर्ष

जसोदा तेरो चिर जीवहु गोपाल।
बेगि बढ़ौ बल सहित बृद्ध लट महरि मनोहर बाल।
उपजि परयो इहि कोख करमवश मुँदी सीप ज्यौ लाल।
या गोकुल के प्रान सजीवन बैरिनि के उर साल।
सूर कितौ मन सुख पावत है देखे स्याम तमाल।
रुज आरति लागौ मेरी अँखियनि रोग दोष जंजाल ॥३४॥

---

१३. कूजै = ध्वनित होना। फलबिंब = बिंबा-फल। पूजै = पाना। गभुआरे = मुंडन के पूर्व के, गर्भ के। मधि = मध्य, बीच मे। चिबुक = ठोढी। दुराजै = असमजस मे। टरत = टलना, दूर होना।

१४ बृद्ध लट = सफ़ेद बाल हों; दीर्घ जीवी हो। मूँदी लाल = सीपी के खुलने पर जैसे रत्न निकल पड़े। उर साल = हृदय में शल्य की तरह चुभनेवाले। रुज आरति = रोग-भय। लागौ मेरी अँखियनि = मेरी आँखों को लगे, मुझे लगे।

माखन-प्रसंग

गोपाल राइ दधि माँगत अरु रोटी।
माखन सहित देहि मेरी जननी सुपक समुगल मोटी।
कत हौ आरि करत मेरे मोहन कहत जु आँगन लोटी।
जो माँगहु सो देहुँ मनोहर यहै बात तेरी खोटी।
प्रातकाल उठि देउँ कलेऊ बदन चुपरि अरु चोटी।
सूरदास कौ ठाकुर ठाढो हाथ लकुट लिऐं छोटी ॥३५॥

नैंकु रहौ माखन दयौ तुमकौ।
ठाढी मथति जननि दधि आतुर लवनी नद सुअन कौं।
मै बलि जाउँ स्यामघन सुदर भूख लगी तुम्हें भारी।
बात कहूँ की बूझति स्यामहि फेर करति महतारी।
कहत बात हरि कछु न समझत झूठें देत हुँकारी।
सूरदास प्रभु के गुन गावत बिसरि गई नँद नारी ॥३६॥

चंद्र-प्रस्ताव

ठाढ़ी अजिर जसोदा अपने हरिहि लिए चदा दिखरावति।
रोवत कत बलि जाउँ तुम्हारी देखौ धौ भरि नयन जुडावत।
चितै रहे तब आपुन ससि तन अपने कर लै लै जु बतावत।
मीठो लगत किधौ यह खाटौ देखत अति सुदर मन भावत।
मन मन ही हरि बुद्धि करत हैं माता कौं कहि ताहि सुनावत।
लागी भूख चंद मैं खैहौ देहु देहु रिस करि बिरुझावत।
जसुमति कहति कहा मैं कीन्हौ रोवत मोहन अति दुख पावत।
सूर स्याम कौ जसुदा बोधति गगन चिरैयाँ उडत लखावति ॥३७॥

---

३५. आरि = झगडा।

३६. लवनी = मक्खन। फेर करति = बातों मे बहलाती है।

३७ बिरुझावत = मचलते हैं। बोधति = मनाती है।

बार बार जसुदा सुत बोधति आउ चद तोहि लाल बुलावै।
मधु मेवा पकवान मिठाई आपुन खैहै तोहिं खवावै।
हाथहि पर तोहि लीन्हे खेलै नहि कबहूँ धरनी बैठावै।
जलभाजन कर लै जु उठावति या ही मै तनु धरि तू आवै।
जलपुट आनि धरनि पर राख्यौ गहि आन्यौ वह चद्र दिखावै।
सूरदास प्रभु हँसि मुसकाने बार बार दोऊ कर नावै।।३८।।

तुव मुख देखि डरत ससि भारी।
कर करिकै हरि हेरयौ चाहत भाजि पताल गयौ अपहारी।
वह ससि तो कैसेहुँ नहि आवत इहि ऐसी कछु बुद्धि बिचारी।
बदन देखि बिधु बुधि सकात मन नैन कज कुडल उजियारी।
सुनहु स्याम तुमकौ ससि डरपत यहै कहत हौ सरन तुम्हारी।
सूर स्याम बिरुझाने सोए लिए लगाइ छतियाँ महतारी।।३९।।

शयन

जसुमति लै पलिका पौढावति।
मेरौ आज अतिहि बिरुझानौ यह कहि कहि मधुरे सुर गावति।
पौढि गई तब हरुए करि कै अग मोरि तब हरि जमुहाने।
कर सौं ठोकि सुतहिं दुलरावति चटपटाइ बैठे अतुराने।
पौढौ लाल कथा एक कहिहौं अति मीठी स्रवननि कौ प्यारी।
यह सुनि सूर स्याम मन हरषे पौढि गये हँसि देत हुँकारी।।४०।।

प्रातः उठना

नाहिनैं जगाइ सकति सुनि सुा बात सजनी।
अपने जान अजहूँ कान्ह मानत हैं रजनी।

३८ जलपुट = जल का पात्र। नावै = डालते है।
३९. अपहारी = छिप गया। सकात = डरता है।
४०. हरुए करि कै = आहिस्ते से।
४१. मानत है रजनी = रात समझ रहे हैं।

जब जब हौ निकट जाति रहति लागि लोभा।
तन की गति बिसरि जाति निरखत मुख सोभा।
बचननि की बहुत करति सोचति जिय ठाढी।
नाहिनै बिचार परति देखत रुचि बाढी।
इहि विधि बदनारबिंद जसुमति मन भावै।
सूरदास सुख की रासि कहत न बनि आवै ॥४१॥

जागिए ब्रजराज-कुँवर कमल कुसुम फूले।
कुमुद बृंद सँकुचित भए भृंग लता भूले।
तमचुर खग रोर सुनहु बोलत बनराई।
राँभति गौ खरिकनि मैं बछरा हित धाई।
बिधु मलीन रबि प्रकास गावत नर नारी।
सूर स्याम प्रात उठौ अंबुज कर धारी ॥४२॥

कलेऊ

उठिए स्याम कलेऊ कीजै।
मनमोहन मुख निरखत जीजै।
खारिक दाख खोपरा खीरा।
केरा आम ऊख रस सीरा।
स्रीफल मधुर चिरौजी आनी।
सफरी चिउरा अरुन खुबानी।

---

४१ रहति लागि लोभा = लुब्ध हो रहती हूँ।
४२. खरिकनि = गायों के रहने और दुहे जाने का स्थान। अंबुज कर धारी = हाथ में कमल धारण करके।
४३. खारिक = छुहारा। दाख = किशमिश। खोपरा = गरी। सीरा = चाशनी। अरुन खुबानी = एक मेवा, जर्दालू।

घेवर फेनी खीर सुहारी।
खोवा सहित खाउ बलिहारी।
रचि पिराक लाडू दधि आनौ।
तुमकों भावत पुरी सँधानौ।
तब तमोर रचि तुमहिं खवावौं।
सूरदास पनवारो पावौं ॥४३॥

कमलनयन हरि करौ कलेवा।
माखन रोटी सद्य जम्यौ दधि भाँति भाँति के मेवा।
खारिक दाख चिरौंजी किसमिस मिसिरी गरी बदाम।
सफरी सेव छुहारे पिस्ता जे तरबूजा नाम।
अरु मेवा बहु भाँति भाँति के षटरस के मिष्टान।
सूरदास प्रभु करत कलेऊ रीझे स्याम सुजान ॥४४॥

क्रीड़ा कौतुक

खेलत स्याम ग्वालनि संग।
सुबल हलधर अरु सुदामा करत नाना रंग।
हाथ तारी देत भाजत सबै करि करि होड।
बरजै हलधर स्याम तुम जनि चोट लगिहै गोड।
तब कह्यौ मैं दौरि जानत बहुत बल मो गात।
मेरी जोरी है सुदामा हाथ मारे जात।

---

४३ घेवर = घी की बनी टिकिया के आकार की मिठाई। फेनी = सूत के लच्छे के आकार की एक मिठाई जो दूध मे भी पड़ती है। पिराक = गोझिया। पनवारो = (जूठी) पत्तल।

४४. सद्य = ताजा।

४५. गोड = पैर। हाथ मारे जात = बाजी लगाकर दौड़ना।

तबै बोलि उठे सुदामा जाहु तारी मारि।
आगे हरि पाछे सुदामा धरयौ स्याम हँकारि।
जानि कै मै रह्यौ ठाढौ छुवत कहा जु मोहि।
सूर हरि खीझत सखा सौ मनहिं कीन्हौ कोह ॥४५॥

सखा कहत है स्याम खिसाने।
आपुहि आप ललकि भए ठाढे अब तुम कहा रिसाने।
बीचहि बोलि उठे हलधर तब इनके माइ न बाप।
हारि जीति कछु नैँकु न जानत लरिकनि लावत पाप।
आपुन हारि सखा सौ झगरत यह कहि दिए पठाइ।
सूर स्याम उठि चले रोइ कै जननी पूछति धाइ ॥४६॥

मैया मोहि दाऊ बहुत खिझायौ।
मोसौं कहत मोल कौ लीन्हौ तू जसुमति कब जायौ।
कहा कहौ इहि रिस कै मारे खेलन हौ नहि जात।
पुनि पुनि कहत कौन है माता को है तुम्हरौ तात।
गोरे नद जसोदा गोरी तुम कत स्याम सरीर।
चुटुकी दै दै हँसत ग्वाल सब सिखै देत बलबीर।
तू मोही कौं मारन सीखी दाउहिँ कबहुँ न खीझै।
मोहन कौ मुख रिस समेत लखि जसुमति सुनि सुनि रीझै।
सुनहु कान्ह बलभद्र चबाई जनमत ही कौ धूत।
सूर स्याम मो गोधन की सौ हौ माता तू पूत ॥४७॥

---

४५. तारी मारि = हाथ मारना। धरयौ स्याम हँकारि = श्याम को बदकर पकड़ा।

४६ खिसाने = खिसियाना, लज्जित होना। पाप = दोष।

४७ खिझायौ = तग किया, चिढाया। खीझै = क्रोध करना, डाटना। चबाई = पर-निदक, बदनामी फैलानेवाला। सौ = शपथ।

खेलन अब मेरी जाइ बलैया ।
जबहिं मोहि देखत लरिकन सँग तबहिं खिझत बल भैया।
मोसौ कहत तात बसुदेव कौ देवकी तेरी मैया।
मोल लियौ कछु दै बसुदेव कौ करि करि जतन बडैया।
अब बाबा करि कहत नद सौ जसुमति सौ कहै मैया ।
ऐसैंहि कहि सब मोहि खिझावत तब उठि चलौ खिसैया।
पाछे नद सुनत हैं ठाढ़े हँसत हँसत उर लैया ।
सूर नद बलरामहि धिरयौ सुनि मन हरष कन्हैया ॥४८॥

खेलन चलिए बाल गोबिद
सखा प्रिय द्वारे बुलावत घोष बालक बृद ।
तृषित हैं सब दरस कारन चतुर चातक दास।
बरपि छवि नव बारिधरही हरहु लोचन प्यास।
बिनय बचन सुने कृपानिधि चले मनोहर चाल।
ललित लघु लघु चरन कर उर बाहु नयन बिसाल।
अजिर पद प्रतिबिंब राजत चलत उपमा पुंज।
प्रति चरन मनौ हेम बसुधा देति आसन कंज।
सूर प्रभु की निरखि सोभा रहे सुर अवलोकि।
सरद चद चकोर मानो रहे थकित बिलोकि॥४९॥

नद बुलावत है गोपाल ।
आवहु बेगि बलैया लैहौ सुदर नैन बिसाल।

---

४८. मेरी जाइ बलैया = मेरी बलाय जाय; मै नही जाऊँगा । जतन बडैया = सिफ़ारिश करके। धिरयौ -धमकी दी।

४९. अजिर कंज = आँगन मे कृष्ण के पैरों का प्रतिबिंब इस प्रकार शोभित होता है मानो सोने की पृथ्वी प्रत्येक चरण के लिए कमल का आसन देती है। देखिए पद २७।

परस्यौ थार धरचो मग चितवत बेगि चलौ तुम लाल।
भात सिरात तात दुख पावत क्यौ न चलौ ततकाल।
हौ बलि जाऊँ नान्हे पायन की दौरि दिखावहु बाल।
छाँडि देहु तुम ललित अटपटी यह गति मद मराल।
सो राजा जो आगम दौरै सूर सु भौन उताल।
जौ जैहै बलदेव पहिले ही तौ हँसिहै सब ग्वाल ॥५०॥

जेवत कान्ह नद इकठोरे।
कछुक खात लपटात दुहूँ कर बालक है अति भोरे।
बड़ो कौर मेलत मुख भीतर मिरिच दसन टकटोरे।
तीछन लगी नयन भरि आए रोवत बाहर दौरे।
फूँकनि बदन रोहिनी ठाढी लिए लगाइ अँकोरे।
सूर स्याम को मधुर कौर दै कीन्हे तात निहोरे ॥५१॥

जेवत स्याम नद की कनिया।
कछुक खात कछु धरनि गिरावत छबि निरखति नँदरनिया।
बरी बरा बेसन बहु भाँतिन ब्यजन बिबिध अगनिया।
डारत खात लेत अपनै कर रुचि मानत दधिदनिया ।
मिसिरी दधि माखन मिश्रित करि मुख नावत छबि धनिया।
आपुन खात नद मुख नावत सो सुख कहत न बनिया।
जो रस नद जसोदा बिलसत सो नहि तिहूँ भुवनिया।
भोजन करि नँद अचवन कीन्ह्यो मागत सूर जुठनिया ॥५२॥

---

५०. मग चितवत = रास्ता देखते है, प्रतीक्षा करते हैं। मद मराल = हस की-सी मद चाल। आगम = आगे आगे। उताल = शीघ्रता से।

५१. इकठोरे = इकट्ठे, एक साथ। टकटोरे = दाँतो से काटना। तीछन = कड़वा। अँकोरे = गोद। तात निहोरे = पिता ने निहोरा किया, मनाया।

५२. दधिदनिया = दधि का दान लेनेवाले (कृष्ण का एक नाम)।

हरि तब आपनि आँखि मुदाई।
सखा सहित बलराम छपाने जहँ तहँ गए भगाई।
कान लागि कह्यौ जननी जसोदा वा घर मैं बलराम।
बलदाऊ कौ आवन दैहौ स्रीदामा सौ काम।
दौरि दौरि कै बालक आवत छुवत महरि के गात।
सब आए रहे सुबल स्रीदामा हारे अबकैं तात।
सोर पारि हरि सुबलहि धाए गहे स्रीदामा धाइ।
दै दै सौहैं नंद बबा की जननी पै लै आइ।
हँसि हँसि तारी देत सखा सब भए स्रीदामा चोर।
सूरदास हँसि कहति जसोदा जीत्यौ है सुत मोर ॥५३॥

ब्यालू करना

चलौ लाल कछु करौ बियारी।
रुचि नाही काहू पर मेरैं तू कहि भोजन करौं कहा री।
बेसन मिलै उरस मैदा सौं अति कोमल पूरी है भारी।
जे वहु स्याम मोहि सुख दीजै तातैं करी जु तुमहि पियारी।
निबुआ चूरन आम सँधान्यौ और करौदनि की रुचि न्यारी।
बार बार तू कहति जसोदा कहि ल्यावै रोहिनि महतारी।
जननी सुनत तुरत लै आई तनक तनक धरि कंचन थारी।
सूर स्याम कछु कछु लै खायौ जल अँचयौ पुनि बदन पखारी ॥५४॥

बटा खेलना

खेलत बनै घोष निकास।
सुनहु स्याम चतुर सिरोमनि इहाँ है घर पास।

---

५३ सोर पारि = आवाज देकर।
५४. बियारी = ब्यालू, रात्रि का भोजन। उरस मैदा = बढ़िया, सूखा हुआ मैदा। भारी = भरी (कचौरी) सँधान्यौ = बनाया है; परोसा है। पखारी = प्रक्षालन करके, पखारकर।
५५ घोष निकास = गाँव के बाहर।

कान्ह हलधर बीर दोऊ भुजा बल अति जोर।
सुबल स्रीदामा सुदामा वै भए इक ओर।
और सखा बँटाइ लीन्हे गोप बालक बृंद ।
चले ब्रज की खोरि खेलन अति उमँग नँद नंद।
सखा जीतत स्याम जाने तब करी कछु पेल।
सूर तब भाषत सुदामा कौन ऐसौ खेल ॥५५॥

खेलत मै को का कौ गुसैंया।
हरि हारे जीते स्रीदामा बरबस ही कत करत रुसैया।
जाति पाँति तुमतै कछु नाहिँन नाहिँन बसत तुम्हारी छैयां।
अति अधिकार जनावत यातै अधिक तुम्हारे है कछु गैयां।
रुहठि करै तासौ को खेलै रहे पौढि जहँ-तहँ सब ग्वैया।
सूरदास प्रभु खेलोइ चाहत दाँव दियौ करि नंद दोहैया ॥५६॥

आवहु कान्ह साँझ की बेरिया ।
गाइनि माँझ भए हौ ठाढे कहति जननि यह बडी कुबेरिया।
लरिकाई कहुँ नैंकु न छाँडत सोइ रहौ सुथरी सेजरिया।
आए हरि यह बात सुनत ही धाइ लिए जसुमति महतरिया।
लै पौढी आँगन ही सुत को छिटकि रही आछी उजियरिया।
सूरदास कछु कहत कहत ही बस करि लिए आइ नीदरिया ॥५७॥

---

५५. खोरि = गली। पेल = बेईमानी।

५६ गोसैया = मालिक। रुसैया = बेईमानी। छैया = छाँह मे, आश्रय में। रुहठि करै = झूठी बात पर अडे, खेल मे झूठा आरोप लगा कर रूठे। ग्वैया = साथी।

५७. सुथरी सेजरिया = साफ, स्वच्छ शय्या पर। छिटकि.. उजियरिया = सुन्दर चाँदनी छिटक रही है। नीदरिया = निद्रा, नीद।

साँटी-प्रसंग

कहत नंद जसुमति सुनु बौरी।
ना जानिऐ कहा तैं देख्यौ मेरे कान्हहिं लावति खोरी।
पाँच बरष कौ मेरौ कन्हैया अचरज तेरी बात।
बिनहीं काज साटि लै धावति ता पाछे बिल्लात।
कुसल रहैं बलराम स्याम दोउ खेलत खात अन्हात।
सूर स्याम कौं कहा लगावति बालक कोमल गात ॥५८॥

गोपालराइ इन्ह चरननि हौं काँटी।
हम अबला रिस बाँचि न जानी बहुत लागि गइ साँटी।
वारौं कर जु कठिन अति कोमल नैनहु नयन जिन डाटी।
मधु मेवा पकवान छाँडिकै काहे खात तुम माटी।
सिगरोइ दूध पियौ मेरे मोहन गोलाहि देहु जनि बाँटी।
सूरदास नँद लेहु दोहिनी दूहहु लाल की नाटी ॥५९॥

माखन-चोरी

प्रथम करी हरि माखन चोरी।
ग्वालिनि मन इच्छा करि पूरन आपु भजे हरि ब्रज की खोरी।
मन में इहै बिचार करत हरि ब्रज घर घर सब जाउँ।
गोकुल जनम लियौ सुख कारन सब कर माखन खाउँ।
बाल रूप जसुमति मोहि जानै गोपिनि मिलि सुख भोग।
सूरदास प्रभु कहत प्रेम सौं घेरौ रे ब्रज लोग ॥६०॥

---

५८ खोरी = दोष, इलजाम। साटि = छडी। बिल्लात = व्यर्थ को हल्ला मचाते हुए। कहा लगावति = क्यों दोष लगाती है।

५९. काँटी = झुक गई हूँ, जुड़ गई हूँ, शरण में हूँ। रिस बाँचि = क्रोध काबू में करना।

फूली फिरति ग्वालि मन मैं री।
पूछति सखी परसपर बातैं पायौ पर्यौ कछु तैं री।
पुलकित रोम रोम गदगद मुख बानी कहत न आवै।
ऐसौ कहा आहि सो सखि री मो कौ क्यो न सुनावै।
तनु न्यारौ, ज्यौ एक हमारो, हम तुम एकै रूप।
सूरदास कहै ग्वालि सखी सो देख्यौ रूप अनूप ॥६१॥

आजु सखी मनि खभ निकट हरि जहँ गोरस कौ गो री।
निज प्रतिबिंब सिखावत ज्यौ सिसु प्रगट करै जनि चोरी।
आध बिभाग आजु तैं हम तुम भली बनी है जोरी।
माखन खाहु कितै डारत हौ छाँडि देहु मति भोरी।
हिसा न लेहु सबै चाहत हौ इहै बात है थोरी।
मोटौ अधिक परम रुचि लागै दैहौ काढि कमोरी।
प्रेम उमँगि धीरज न रह्यौ तब प्रगट हँसी मुख मोरी।
सूरदास प्रभु सकुचि निरखि मुख भजे कुज गहि खोरी ॥६२॥

करत हरि ग्वालनि सग बिचार।
चोरि माखन खाहु सब मिलि करौ बाल बिहार।
यह सुनत सब सखा हरषे भली कही कन्हाइ।
हँसि परसपर देत तारी सौह करि नँदराइ।
कहाँ तुम्ह यह बुद्धि पाई स्याम चतुर सुजान।
सूर प्रभु मिलि ग्वाल बालक करत है अनुमान ॥६३॥

चली ब्रज घर घरनि यह बात।
नंदसुत सँग सखा लीन्हे चोरि माखन खात।

---

६१. पायौ परयौ = गिरा हुआ कुछ पाया है। ज्यौ = प्राण।
६२. ज्यौं सिसु = जैसे कोई लडके को सिखाता है। आध बिभाग = आधा हिस्सा। थोरी = छोटी बात है; अनुचित है।

कोउ कहति मेरे भवन भीतर अबहिं पैठे धाइ।
कोउ कहत मोहि देखि द्वारैं गयौ तबहिं पराइ ।
कोउ कहति केहि भाँति हरि कौ देखौं अपनैं धाम।
हेरि माखन देहि आछौ खाइ जितनौ स्याम।
कोउ कहति मैं देखि पावौ भरि धरौ अँकवारि।
कोउ कहति मै बाँधि राखौ को सकै निरुवारि।
सूर प्रभु के मिलन कारन करति बुद्धि बिचार।
जोरि कर बिधि कौ मनावति पुरुष नदकुमार ।।६४।।

जसोदा कहँ लौ कीजै कानि।
दिन प्रति कैसैं सही परति है दूध दही की हानि।
अपने या बालक की करनी जौ तुम देखौ आनि।
गोरस खाइ ढूँढि सब बासन भली करी यह बानि।
मै अपने मदिर के कोनैं माखन राख्यौ जानि।
सोई जाइ तुम्हारैं लरिका लीन्हौ है पहिचानि।
बूझी ग्वालिनि घर मै आयौ नैंकु न सका मानि ।
सूर स्याम तब उत्तर बनायौ चीटी काढत पानि ।।६५।।

साँवरेहिं बरजति क्यौ जु नही।
कहा करौ दिन प्रति की बातै नाहिंन परतिं सही।
माखन खात दूध लै डारत लेपत देह दही।
ता पाछैं घरहू के लरिकनि भाजत छिरकि मही ।
जो कछु धरैं दुराइ दूर लै जानत ताहि तही ।
सुनहु महरि तेरे या सुत सौ हम पचि हारि रही ।

---

६४. हेरि = ढूँढकर। निरुवारि = छुडाना ।
६५. कानि = सकोच । बानि = आदत । चीटी. पानि = हाथ से चीटी निकाल रहा था।
६६. बरजति = मना करती है। भाजत = भागते है। दुराइ = छिपाकर।

चोर अधिक चतुराई सीखी जाइ न कथा कही।
तापर सूर बछरुवन ढीलत बन बन फिरतिँ बही ॥६६॥

मेरौ गोपाल तनकसौ कहा करि जानै दधि की चोरी।
हाथ नचावति आवतिँ ग्वालिनि जीभि न करही थोरी।
कब सीकैं चढ़ि माखन खायौ कब दधि मटुकी फोरी।
अँगुरिन करि कबहूँ नहिं चाखत घरही भरी कमोरी।
इतनी सुनत घोष की नारी बिहँसि चली मुख मोरी।
सूरदास जसुदा को नंदन जो कछु करै सो थोरी ॥६७॥

चोरी करत कान्ह धरि पाए।
निसि बासर मोहि बहुत सतायौ अब हरि हाथहि आए।
माखन दधि मेरौ सब खायौ बहुत अचगरी कीन्ही।
अब तौ आइ परे हौ लालन तुम्हे भले मैं चीन्ही।
दोउ भुज पकरि कह्यौ कित जैहौ माखन लेउ मँगाइ।
तेरी सौ मैं नैंकु न चाख्यौ सखा गए सब खाइ।
मुख तन चितै बिहँसि हँसि दीन्हौ रिस तब गई बुझाइ।
लियौ उर लाइ ग्वालिनी हरि कौ सूरदास बलि जाइ ॥६८॥

कत हौ कान्ह काहू कैं जात।
ये सब ढ़ीठ गर्ब गोरस कैं मुख सँभारि बोलतिँ नहि बात।
जोइ जोइ रुचै सोइ सोई तब मो पै माँगि लेहु किन तात।
ज्यौं ज्यौं बचन सुन्यौ मुख अमृत त्यौं त्यौं सुख पावतिँ सब गात।

---

६६ चोर अधिक चतुराई = चोरी से बढ़कर चालाकी सीखी है। बछरुवन = बछडो को।

६७ हाथ नचावति = हाथ नचाते हुए शिकायत करती है। जीभ .... थोरी = बकवास करती है। सीकैं = सिकहर, जो दीवाल में टँगा रहता है।

६८ अचगरी = नटखटपन। आइ परे = पकड़ मे आए।

ऐसो टेव परी इन गोपिन्ह उरहन के मिस आवतिँ प्रात।
सूर सु कित हठि दोषलगावतिँ घरहूँ को माखन नहिँ खात ॥६९॥

स्याम गए ग्वालिनि घर सूनौ।
माखन खाइ डारि सब गोरस बासन फोरि सोर हठि दूनौ।
बड़ौ माट इक बहुत दिननि कौ तासु किए दस टूक।
सोवत लरिकनि छिरकि मही सो हँसत चले दै कूक।
आइ गई ग्वालिनि तिहि अवसर निकसत हरि धरि पायौ।
देखति घर बासन सब फूटे दही दूध ढरकायौ।
दोउ भुज धरि गाढे कर लीन्हे गई महरि के आगेँ।
सूरदास अब बसै कौन ह्याँ पति रहिहै ब्रज त्यागेँ ॥७०॥

करत कान्ह ब्रज घरनि अचगरी।
खीझति महरि कान्ह सौ पुनि पुनि उरहन लै आवति है सिगरी।
बड़े बाप के पूत कहावत हम वै बास बसत इक नगरी।
नदहु तैं ये बडे कहैहै फेरि बसैहै ये ब्रजनगरी।
जननी के खीझत हरि रोए झूठैंहि मोहि लगावतिँ धँगरी।
सूर स्याम मुख पोछि जसोदा कहतिँ सबै जुवती हैं लँगरी ॥७१॥

महरि तुम ब्रज चाहतिँ कछु और।
बात एक मैं कही कि नाही आपु लगावति झौर।
जहाँ बसे पति नही आपनी तजन कह्यौ सो ठौर।
सुत के भए बधाई पाई लोगनि देखत हौर।
कान्ह पठाइ देति घर लूटन कहति करौ या गौर।

---

६९ उरहन = उलहना।

७० माट = बडा घडा। कूक = जोर की ध्वनि, किलकारी। गाढ़ = कसकर पकडा।

७१ सिगरी = सब। धँगरी = नीच स्त्रियाँ। लँगरी = टेढ़ी, उद्धत।

७२ झौंर = झगड़ा-टटा।

ब्रज घर समुझि लेहु अपनौ अब हहा करति कर जोरि।
सूर सुनत ग्वालिनि की बातें रह्या जसुमति मुख मोरि ॥७२॥

जसुदा तू जो कहति ही मोसो।
दिन प्रति देन उरहनौ आवनि कहा तिहारौ को मो।
यहै उरहनौ सत्य करन कौ गोबिंदहि गहि ल्याई।
देखन चली जसोदा सुत कौ ह्वै गए सुता पराई।
तेरे हृदय नैकु मति नाही बदन पेखि पहिचान्है।
सुनि री सखी कहति डोलति है या कन्या सौ कान्है।
तैं जु नाम कान्ह मेरे कौ मृधो है करि पायौ।
सूरदास स्वामी यह देखौ नग्न त्रिया ह्वै आयौ॥७३॥

तेरै लाल मेरो माखन खायो।
दुपहर दिवस जानि घर सूनौ ढूँढि ढँढोरि आपहीं आयौ।
खोलि किवार सूने मदिर मै दूध दही सब सखनि खवायौ।
सीकै काढि खाट चढि मोहन कछु खायौ कछु लै ढरकायौ।
दिन प्रति हानि होति गोरस की यह ढोटा कौनैं ढँग लायौ।
सूरदास कहती ब्रजनारी जसुमति पूत अनोखो जायौ॥७४॥

मैया मै नाहीं दधि खायौ।
ख्याल परे ये सखा सबै मिलि मेरैं मुख लपटायौ।
देखि तुही सीके पर भाजन ऊँचे धरि लटकायौ।
तुही निरखि नान्हे कर अपने मैं कैसैं करि पायौ।
मुख दधि पोछि कहत नँदनदन दोना पीठि दुरायौ।
डारि साँटि मुसकाइ तबहि गहि सुत कौं गोद लगायौ।

---

७४ कौनैं ढँग लायो = कैसी आदत कर रक्खी है। पूत = पुत्र।
७५ ख्याल परे = खेल-खेल में। दुरायौ = छिपाया।

बाल-विनोद मोद मन मोह्यो भगति प्रताप दिखायौ।
सूरदास प्रभु जसुमति कैं सुख सिव विरंचि बौरायौ ॥७५॥

बाँधौ आजु कौन तोहि छोरै।
बहुत लँगरई कीन्ही मोसौं भुज गहि रजु ऊखल सौ जोरै।
जननी अति रिस जानि बँधायौ चितै बदन लोचन जल ढोरै।
यह सुनि ब्रज जुवती उठि धाईं कहतिं कान्ह अब कु नहि चोरै।
ऊखल सौं गहि बाँधि जसोदा मारन कौ साँटी कर तोरै।
साँटी पेखि ग्वालि पछितानी विकल भई जहँ-तहँ मुख मोरै।
सुनहु महरि ऐसी न बूझिऐ सुत बाधति माखन दधि थोरै।
सूर स्याम कौ बहुत सतायौ चूक परी हमतें यह भोरैं ॥७६॥

जाहु चली अपनैं अपनैं घर।
तुमही सब मिलि ढीठ करायौ अब आईं बधन छोरन बर।
मोहि अपने बाबा की सौहैं कान्हैं अब न पत्याउँ।
भवन जाहु अपनैं अपनैं सब लागति हौ मैं पाउँ।
मोकौ जनि बरजौ जुवती कोउ देखौ हरि के ख्याल।
सूर स्याम सौ कहति जसोदा बडे नद के लाल ॥ ७७ ॥

देखौ माइ कान्ह हिलकियनि रोवै।
तनकहि मुख माखन लपटान्यौ डर तें अँसुवनि धोवै।
माखन लागि उलूखल बाँध्यौ सकल लोग ब्रज जोवै।
निरखि कुरुख उन लरिकनि की दिसि लाजन अँखियनि धोवै।

---

७५. **बौरायौ** = पागल कर दिया।
७६ रजु = रस्सी। ढोरै = गिराते हैं।
७७ ख्याल = करामात। 'बडे नद के लाल' = व्यंग्य मे (क्रोधनाट्य)
७८ हिलकियनि = हिलकी ले-लेकर। तनकहि = थोड़ा-सा। कुरुख = चिढ के साथ।

ग्वाल कहैं धनि जननि हमारी सुकर सुरभि नित नोवै।
बरबस ही बैठारि गोद मैं धारै बदन निचोवै।
ग्वालि कहैं या गोरस कारन कत सुत की पति खावै।
आनि देहिं हम अपने घर तैं चाहति जितकु जसोवै।
अब जब बंधन छोरयो चाहति सूर कहै यह को वै।
मन माधव तन चित गोरस मैं इहिं बिधि महरि बिलोवै॥ ७८॥

कहौ तौ माखन ल्याऊँ घर तैं।
जा कारन तू छोरति नाहीं लकुट न डारति कर तैं।
महरि सुनहु ऐसी न बूझिऐ सकुचि गयौ मुख डर तैं।
मनहुँ कमल दधिसुत समयौ तकि फूलत नाहिँन सर तैं।
ऊखल लाइ भुजा धरि बाँधे मोहन मूरति बरतै।
सूर स्याम लोचन जल बरषत जनु मुक्ता हिमकर तै॥ ७९॥

कहन लगीं अब बढ़ि बढ़ि बात।
ढोटा मेरौ तुमहिं बँधायौ तनकहिं माखन खात।
अब मोहि माखन देति मँगाए मेरैं घर कछु नाहि।
उरहन करि करि साँझ सबारैं तुमहिं बँधायौ याहि।
रिसही मैं मोकौ गहि दीन्हौ अब लागी पछितान।
सूरदास हँसि कहति जसोदा बूझ्यौ सब कौ ज्ञान॥ ८०॥

ऐसी रिस तोकौ नँदरानी।
भली बुद्धि तेरैं जिय उपजी बडी बैस अब भई सयानी।

---

७८ सुकर = अपने हाथ। सुरभि = गाय। नोवै = नोई बाँधकर दुहती है। बिलोवै = मक्खन निकालती है।

७९ दधिसुत समयौ तकि = चन्द्रमा के उदय होने का समय जानकर। बरतै = ज़बरदस्ती।

८१ बड़ी बैस = बुढ़ापे में। सयानी = अकलमन्द (व्यंग्य में)।

छोटा एक भयौ कैसेंहु करि कौन कौन करबर बिधि भानी।
क्रम क्रम करि अबलौ है उबर्‌यौ ताकौं मारि पितर दै पानी।
को निरदयी रहै तेरें घर को तेरें सँग बैठे आनी।
सुनहु सूर कहि कहि पचिहारी जुवती चली घरहिँ बिरुझानी ॥८१॥

अब घर काहू कैं जनि जाहु।
तुम्हरैं आजु कमी काहे की कत तुम अनतहिं खाहु।
बरै जेवरी जिन तुम्ह बाँधे परै हाथ भहराइ।
नद मोहि अति ही त्रासत हैं बाँधे कुँवर कन्हाइ।
रोग जाउ अपने हलधर कौ छोरत है तब स्याम।
सूरदास प्रभु खात फिरौ जनि माखन दधि तुव धाम ॥ ८२ ॥

ब्रज जुवती स्यामहि उर लावतिं।
बारहिं बार निरखि कोमल तनु कर जोरतिं बिधि को जु मनावतिं
कैसें बचे अगम तरु कैतर मुख चुबतिं यह कहि पछितावतिं।
उरहनौ लै आवतिं जेहि कारन सो सुख फल पूरो करि पावतिं।
सुनहु महरि इनकौं तुम बाँधति भुज गहि बधन चिन्ह दिखावतिं।
सूरदास प्रभु अति रति नागर गोपी हरषि हृदयँ लपटावतिं ॥८३॥

जसुमति कहति कान्ह सौ मेरे अपनें ही आँगन तुम खेलौ।
बोलि लेहु सब सखा सग के मेरौ कह्यौ कबहुँ जनि पेलौ।
ब्रज-बनिता सब चोर कहतिं तोहिं लाजनि सकुचि जात मन मेरौ।
आज मोहि बलराम कहत हे झूठेंहिं नाम लेति है तेरौ।

---

८१. करबर = सकट। बिधि भानी = भगवान् ने टाले। उबर्‌यौ = बचा है। पितर दै पानी = पितरो का उद्धार कर (व्यग्य में)।

८२. जेवरी = रस्सी, भहराइ = टूट पड़ना।

८४. पेलौ = टालौ, उल्लघन करो।

जब मोहि रिस लागति तब त्रासति बाधति जैसें चेरौ।
सूर हँसनिँ ग्वालिनि दै तारी चोर नाम कैसेँहु सुत फेरौ॥ ८४॥

मोहि कहतिँ जुवती सब चोर।
खेलत रहौं कतहुँ मैं बाहर चितै रहतिँ सब मेरी ओर।
बोलि लेतिं भीतर घर अपनैं मुख चूमतिं भरि लेतिं अँकोर।
माखन हेरि देतिं अपनै कर कछु कहि बिधि सौं करतिँ निहोर।
जहाँ मोहि देखतिँ तहाँ टेरतिँ मैं नहि जात दोहाई तोर।
सूर स्याम हँसि कंठ लगायौ वै तरुनी कहँ बालक मोर॥ ८५॥

भूखौ भयौ आजु मेरौ बारौ।
भोरेंहि ग्वालिनि उरहनौ ल्याइ उहिँ यह कियौ पमारौ।
पहिलेंहि रोहिनि सौं कहि राख्यौ तुरत करहु ज्यौनार।
ग्वाल बाल सब बोलि लिए मिलि बैठे नंदकुमार।
भोजन बेगि लाउ कछु मैया भूख लगी मोहि भारी।
आजु सबारें कछू न खायौ सुनत हँसी महतारी।
रोहिनि चितै रही जसुमति तन सिर धुनि धुनि पछितानी।
परसहु बेगि बेर कत लावति भूखे सारँगपानी।
बहु ब्यंजन बहु भाँति रसोई षटरस के परकार।
सूर स्याम हलधर दोउ भैया और सखा सब ग्वार॥८६॥

गोदोहन

धेनु दुहत हरि देखत ग्वालनि।
आपुन बैठि गये तिनकें सँग सिखवहु मोहि कहत गोपालनि।

---

८४. चेरौ = गुलाम, दास। फेरौ = बदलो।
८५ अँकोर = आलिंगन।
८६ पमारौ = तूल देना।

कालिह तुम्हे गो दोहन सिखवै दुही सबै अब गाइ ।
भोर दुहो जे नंद दोहाई उनसो कहत सुनाइ ।
बड़ौ भयौ अब दुहत रहौगो अपनी धेनु निबेरि ।
सूरदास प्रभु कहत सौह दै मोहि लीजौ तुम टेरि ॥८७॥

मै दुहिहौ मोहि दुहन सिखावहु ।
कैसे धार दूध की बाजति सोइ सोइ बिधि तुम मोहि बतावहु ।
कैसे दुहत दोहनी घुटुवनि कैसें बछरा थनहि लगावहु ।
कैसे लै नोई पग बाधत कैसे लैरा पग अटकावहु ।
निपट भई अब साँझ कन्हैया गाइनि पै कहुँ चोट लगावहु ।
सूर स्याम सों कहत ग्वाल सब धेनु दुहन प्रातहि उठि आवहु ॥८८॥

जागहु लाल ग्वाल सब टेरत ।
कबहुँ पीताबर डारि बदन पर कबहुँ उघारि जननि तन हेरत ।
सोवत मै जागत मनमोहन बात सुनत सबकी अवडेरत ।
बारबार जगावति माता लोचन खोलि पलक पुनि घेरत ।
पुनि कहि उठी जसोदा मैया उठहु कान्ह रबि-किरनि उजेरत ।
सूर स्याम हँसि चितै मातु मुख पट कर लै पुनि पुनि मुख फेरत ॥८९॥

दाऊ जू कहि स्याम पुकारचौ ।
नीलाबर पट ऐचि लियौ हरि मनौ बादर तै चद उघारचौ ।

---

८७ भोर दुहो सुनाइ = जो नद की दुहाई देकर यह कहते है कि सबेरे गाय दुहना उन्हे सुनाकर श्री कृष्ण कहते हैं । निबेरि = अलग करके, छाँटकर ।

८८ दोहनी = दुहने का पात्र, बर्तन । नोई = गाय के पैरो म बाधने की रस्सी, लैरा = बछडा ।

८९. अवडेरत = उपेक्षा करना, सुनी अनसुनी करना । पट कर लै = हाथ से मुख पर कपडा डालकर ।

हँसत हँसत दोउ बाहर आये माता लै जल बदन पखारचौ।
दतुवनि लै दुहुँ करी मुखारी नैननि कौ आलस जु बिसारचौ।
माखन खाहु दुहुनि कर दीन्हौ तुरत मथ्यौ मीठौ अति सारचौ।
सूरदास प्रभु खात परसपर माता अंतर हेत बिचारचौ ॥९०॥

तनक कनक की दोहनी दै दै री मैया।
तात दुहन सीखन कह्यौ मोहि धौरी गैया।
अटपटे आसन बैठि कै गो थन कर लीन्हौ।
धार अनत ही देखि कै ब्रजपति हँसि दीन्हौ।
घर घर तें आइ सबै देखन ब्रजनारी।
चितै चोरि चित हरि लियौ हँसि गोपबिहारी।
बिप्र बोलि आसन दियौ कह्यौ बेद उचारी।
सूर स्याम सुरभी दुही संतन हितकारी ॥९१॥

बकासुरवध

बका बिदारि चले ब्रज कौं हरि।
सखा संग आनंद करत सब अंग अंग बनधातु चित्र करि।
बनमाला पहिरावत स्यामहिं बार बार अँकवार भरत धरि।
कंस निपात करौगे तुमही हम जानी यह बात सही परि।
पुनि पुनि कहत धन्य नँद जसुमति जिन इनकौं जनम्यौ सो धनि घरि।
कहत यहै सब जात सूर प्रभु आनँद आँसू लेत नैन भरि ॥९२॥

---

९० सारचौ = बनाया हुआ, काढा हुआ।
९१ धौरी = सफेद। करी बेद उचारी = वेदध्वनि की।
९२ बनधातु = एक प्रकार की सफेद मिट्टी। सही परि = निश्चय-पूर्वक होगी।

ब्रजबालक सब जाइ तुरत हीं महर महरि कैं पाइ परे।
ऐसौ पूत जन्यौ जग तुमहीं धन्य कोख जहँ स्याम धरे।
गाइ लिवाइ गये बृंदाबन चरत चलीं जमुना तट हेरि।
असुर एक खग रूप रह्यौ धरि बैठ्यौ तीर बाइ मुख पेरि।
चोंच एक पुहुमी करि राखी एक रह्यौ हो गगन लगाइ।
हम बरजत हरि पहिलैंहि धायौ बदन चीरि पल माहिं गिराइ।
सुनत नंद जसुमति अति चकित, चकित चित सुनि नर अरु नारि।
सूरदास प्रभु मन हरि लीन्हौ तब जननी भरि लई अँकवारि ॥१३॥

गोचारण

नंद महर के भावते जागो मेरे बारे।
प्रात भयौ उठि देखिऐ रबि किरनि उज्यारे।
ग्वाल बाल सब टेरहीं गैया बन चारन।
लाल उठौ मुख धोइऐ लागी बदन उघारन।
मुख तें पट न्यारो कियौ माता कर अपनें।
देखि बदन चकित भई सौंतुक कै सपनें।
कहा कहौं वहि रूप की को बरनि बतावै।
सूरज प्रभु गुन अपार नँद सुवन कहावै ॥ १४ ॥

दोउ भैया जेवत मा आगैं।
पुनि पुनि लै दधि खात कन्हाई और जननि पै माँगैं।
अति मीठौ दधि आज जमायौ बलदाऊ तुम लेहु।
देखौ धौं दधि स्वाद आपु लै ता पाछैं मोहि देहु।
बल मोहन दोउ जेवत रुचि सौं सुख लूटति नँदरानी।
सूर स्याम अब कहत अघाने अँचवन माँगत पानी ॥ १५ ॥

---

१३. बाइ मुख = मुह बाकर। पुहुमी = जमीन।
१४. भावते = प्यारे। सौंतुक = प्रत्यक्ष। कै = अथवा।

बन पहुँचत सुरभी लईं धाइ।
जैहौ कहाँ सखनि कौं टेरत हलधर संग कन्हाइ।
अँबन परखि लियौ नहि हमकौ तुम अति करी चँड़ाइ।
अब हम जैहैं दूरि चरावन तुम सँग रहै बलाइ।
यह सुनि ग्वाल धाइ तहँ आए स्यामहि अकम लाइ।
सखा कहत यह नंदसुवन सौं तुम सबके सुखदाइ।
आज चलौ बृंदाबन जैऐ गैया चरैं अघाइ।
सूरदास प्रभु सुनि हरषित भए घरतैं छाक मँगाइ॥ ९६॥

गैयनि घेरि सखा सब ल्याए।
देख्यौ कान्ह जात बृंदावन यातैं मन अति हरष बढ़ाए।
आपुस मैं सब करत कुलाहल धौरी धूमरि धेनु बुलाए।
सुरभी हाँकि देत सब जँह तँह टेरि टेरि हेरी सुर गाए।
पहुँचे आइ बिपिन घन बृंदा देखत द्रुम दुख सबनि गवाए।
सूर स्याम गए बका मारिकै ता दिन तै इहि बन अब आए॥९७॥

चरावत बृंदावन हरि धेनु।
बाल सखा सब संग लगाए खेलत हैं करि चैनु।
कोउ गावत कोउ मुरलि बजावत कोउ बिषान कोउ बैन।
कोउ निरतत कोउ उघटि तार दै जुरी ब्रजबालक सैन।
त्रिबिध पवन जहँ बहत सु निसिदिन सुभग कुंज घन ऐन।
सूर स्याम निज धाम बिसारत आवत यह सुख लैन॥ ९८॥

---

९६. परखि = ठहरकर प्रतीक्षा करना। चँड़ाइ = फुर्ती। अकम = अँकवार, आलिंगन। छाक = दोपहर का भोजन, जो अहीर प्रायः वन मे करते हैं।

९७. धूमरि = धूम्र वर्ण की। हेरी = हे या हो की टेक देकर गाया जानेवाला ग्रामगीत।

९८. बिषान = बारहसिंहा बाजा। उघटि तार दै = ताली या चुटकी आदि के द्वारा ताल का संकेत करना। ऐन = घर।

बृंदावन मोकौ अति भावत ।
सुनहु सखा तुम सुबल स्रीदामा ब्रज तैं बन गो-चारन आवत ।
कामधेनु सुरतरु सुख जितने सभा सहित बैकुंठ बुलावत ।
यह बृंदाबन यह जमुनातट ये सुरभी अति सुखद चरावत ।
पुनि पुनि कहत स्याम स्रीमुख तैं तुम मेरैं मन अतिहिं सुहावत ।
सूरदास सुनि ग्वाल चकित भए यह लीला हरि प्रगट दिखावत ॥९९॥

सुभग साँवरे गात की मै सोभा कहत लजाउँ ।
मोर पंख सिर मुकुट की मुख मटकनि की बलि जाउँ ।
कुंडल लोल कपोलनि झाँई बिहँसनि चित्तहिं चुरावै ।
दसन दमक मोतिनि लर ग्रीवा सोभा कहत न आवै ।
उर पर पदिक कुसुम बनमाला अँग धुकधुकी बिराजै ।
चित्रित बाहु पहुँचियाँ पहुँचैं हाथ मुरलिका छाजै ।
कटि पट पीत मेखला मुकुलित पाइनि नूपर सोहै ।
आस पास बर ग्वाल मंडली देखत त्रिभुवन मोहै ।
सब मिलि आनँद प्रेम बढावत गावत गुन गोपाल ।
यह सुख देखत स्याम संग कौ सूरदास सब ग्वाल ॥ १०० ॥

छाक लेन जे ग्वाल पठाए ।
तिनसौं बूझति महरि जसोदा छाँड़ि कन्हैयहिं आए ?
हमहिं पठाइ दए नँदनदन भूखे अति अकुलाए ।
धेनु चरावत हैं बृंदाबन हम इहि कारन आए ।
यह कहि ग्वाल गए अपनै घर बन की खबरि सुनाए ।
सूर स्याम बलराम प्रातही अध जेवत उठि धाए ॥ १०१ ॥

---

१००. झाँई = चमक या छाया । पदिक = आभूषणविशेष ।
धुकधुकी = एक आभूषण जो सीने पर धारण करते है ।
१०१ अधजेवन = आधे पेट खाकर ।

जोरति छाक प्रेम सा मैया।
ग्वालनि बोलि लए अधजेवन उठि दौरे दोउ भैया।
तबही तै भोजन नहिं कीनौ चाहनि दियौ पठाइ।
भूखे आजु भए दोउ भैया आपहि बोलि मँगाइ।
सद माखन साजौ दधि मीठौ मधु मेवा पकवान।
सूर स्याम कौं छाक पठावति कहति ग्वारि सौ जान ॥ १०२ ॥

बहुत फिरी तुम काज कन्हाई।
टेरि टेरि मै भई बावरी दोउ भैया तुम रहे लुकाई।
जे सब ग्वाल गए ब्रज घर कौ तिनसौं कहि तुम छाक मँगाई।
लवनी दधि मिष्टान्न जोरि कै जसुमति मेरे हाथ पठाई।
ऐसी भूख माझ तू ल्याई तेरी कोहि बिधि करौ बडाई।
सूर स्याम सब सखनि पुकारत आवहु क्यौ न छाक है आई ॥ १०३॥

गिरि पर चढि गिरिवरधर टेरे।
अहो सुबल स्रीदामा भैया ल्यावहु गाइ खरिक कै नेरे।
आई छाक अबार भई है नैसुक धैया पियेहु सबेरे।
सूरदास प्रभु बैठि सिलनि पर भोजन करे ग्वाल चहुँ फेरे ॥ १०४॥

आई छाक बुलाए स्याम।
यह सुनि सखा सबै जुरि आए सुबल सुदामा अरु स्रीदाम ।
कमल पत्र दोना पलास के सब आगे धरि परुसत जात।
ग्वाल मडली मध्य स्यामघन सब मिलि भोजन रुचि करि खात।

---

१०२. जोरति छाक = छाक की सामग्री सजाती है। चाहनि = खबर।
१०३. माझ = मध्य मे, बीच मे ।
१०४ खरिक = गायो के खडे करने का स्थान । नैसुक = स्वल्प; थोडा-सा । धैया = गाय के थन का दूध । चहुँफेर = मडली बनाकर ।

एसो भूख साँझ यह भोजन पठै दियौ करि जसुमति मात।
सूर स्याम अपनौ नहिं जेंवत ग्वालनि कर तैं लै लै खात ॥१०५॥

सखनि संग हरि जेंवत छाक।
प्रेम सहित मैया दै पठए सबै बनाए है एकताक।
सुबल सुदामा स्रीदामा सँग सब मिलि भोजन रुचि सौं खात।
ग्वालनि कर तैं कौर छुड़ावत मुख लै मेलि सराहत जात।
जो सुख कान्ह करत बृंदाबन सो सुख नहीं लोक हूँ सात।
सूर स्याम भक्तनि बस ऐसे ब्रजहि कहावत है नँदतात ॥१०६॥

ग्वालनि कर तैं कौर छुड़ावत।
जूठौ लेत सबनि के मुख को अपनैं मुख लै नावत।
षट्रस के पकवान धरे सब तामैं नहि रुचि पावत।
हा हा करि करि माँगि लेत है कहत मोहि अति भावत।
यह महिमा एई पै जानैं जानें आप बँधावत।
सूर स्याम सपनें नहि दरसत मुनिजन ध्यान लगावत ॥ १०७ ॥

जवत छाक गाइ बिसराई।
सखा स्रीदामा कहत सबनि सौ छाकहि में तुम रहे भुलाई।
धेनु नहीं देखिअत कोउ नियरे भोजन ही में साँझ लगाई।
सुरभि काज जहँ तहँ उठि धाए आपु तहाँ उठि चले कन्हाई।
ल्याये ग्वाल घेरि गो गोसुत देखि स्याम मन हरष बढ़ाई।
सूरदास प्रभु कहत चलौ घर बन मैं आजु अबार लगाई ॥ १०८ ॥

---

१०६. एकताक = रुचिपूर्वक, ध्यान लगाकर। कौर = ग्रास, कवल।
१०७ हा हा करि = मिन्नत करके, दीन स्वर में।
१०८. नियरे = निकट, नजदीक।

ब्रजहि चलौ आई अब साँझ।
सुरभी सबै लेहु आगैं करि रैनि होइ पुनि बनही माझ।
भली कही यह बात कन्हाई अतिहि सघन आरन्य उजार।
गैयाँ हाँकि चलाईं ब्रज कौ और ग्वाल सब लिए पुकारि।
निकसि गए बन तै सब बाहिर अति आनद भए सब ग्वाल।
सूरदास प्रभु मुरलि बजावत ब्रज आवत नटवर गोपाल ॥ १०९ ॥

देखि सखी बन तैं जु बने ब्रज आवत हैं नँदनदन।
सिखड सीस मुख मुरलि बजावत बन्यौ तिलक उर चंदन।
कुटिल अलक मुख चचल लोचन निरखत अति आनदन।
कमल मध्य मानौ द्वै खजन बँधे आइ उडि फदन।
अरुन अधर छबि दसन बिराजति जब गावत कल मदन।
मुक्ता मनौ लाल मनिमय पुट धरे मुरकि बर बदन।
गोप बेष गोकुल गो चारत है प्रभु असुर निकदन।
सूरदास प्रभु सुजस बखानत नेति नेति स्रुति छंदन ॥ ११० ॥

सोभा कहत कहे नहि आवै।
अँचवत अति आदर लोचन पुट मन न रूप कौ पावै।
सजल मेघ घनस्याम सुभग बपु तडित बसन उर माल।
सिखी सिखर तन धातु बिराजति सुमन सुगध प्रवाल।
कछुक कुटिल कौ विपिन सघन सिर गोरज मडित केस।
सोभित मनु अबुज पराग रस राजत अली सुदेस।

---

१०९. आरन्य = जगल, वन। नटवर = सुन्दर नट-रूप धारण किये हुए।

११०. सिखड = मयूरपुच्छ। 'कमल' मुख के, 'खंजन' आँखों के और 'फंदन' अलकों के उपमान हैं। कल मदन = मीठे और मंद स्वर में। मुरकि = छिडककर। बंदन = रोली।

१११. अँचवत = पीते हैं। लोचन पुट = आँखों के पात्रों से। अबुज = कमल। पराग = फूल की धूलि, पुष्परेणु। अली = भ्रमर।

कुंडल किरिन कपोल कुटिल छबि नैन कमल दल मीन।
प्रति प्रति अंग अंग कोटिक छबि सुनु सखि परम प्रबीन।
अधर मधुर मुसकानि मनोहर कोटि मदन मनहीन।
सूरदास जहँ दृष्टि परति है होति तहीं लवलीन॥ १११॥

बन तें आवत धेनु चराए।
संध्या समय साँवरे मुख पर गोपद रज लपटाए।
बरह मुकुट कैं निकट लसति लट मधुप बने रुचि पाए।
बिलसत सुधा जलद आनन पर उड़त न जात उड़ाए।
बिधि-बाहन-भच्छन की माला राजति उर पहिराए।
एक बपु रहे नाहि बड़े छोटे ग्वाल बने एकदाए।
सूरदास मिलि लीला प्रभु की जीवत जन जस गाए॥ ११२॥

आजु हरि धेनु चराए आवत।
मोर मुकुट बनमाल बिराजत पीतांबर फहरावत।
जिहि जेहि भाँति ग्वाल सब बोलत सुनि स्रवननि मन राखत।
आपुन टेरि लेत ताही सुर हरषत पुनि पुनि भाषत।
देखत नंद जसोदा रोहिनि अरु देखत ब्रज लोग।
सूर स्याम गाइनि सँग आए मैया लीन्हौ रोग॥ ११३॥

जसुमति दौरि लए हरि कनियाँ।
आजु गयौ मेरौ गाइ चरावन हौं बलि गई निछनियाँ।
मो कारन कछु आन्यौ है बलि बनफल तोरि कन्हैया?
तुमहि मिले मैं अति सुख पायौ मेरे कुवँर कन्हैया।

१११ मनहीन = उदासीन।
११२ बरह = मयूर। बिधि-बाहन-भच्छन = मोती। एक बपु = एक ही प्रकार के शरीरवाले। एकदाए = एक ही आकार के। जन = दास।
११३. लीन्हौ रोग = नजर झाड़ना।
११४. कनियाँ = गोद। निछनियाँ = पूर्ण रूप से।

कछुक खाहु जो भावै मोहन दै री माखन रोटी।
सूरदास प्रभु जीवहु जुग जुग हरि हलधर की जोटी ।। ११४ ।।

मैं अपनी सब गाइ चरैहौ।
प्रात होत बल कैं सँग जैहौ तेरैं कहे न भुरैहौ।
ग्वाल बाल लै गाइनि भीतर नैकहूँ डर नहि लागत।
आजु न सोवौ नद दोहाई रैनि रहौगो जागत।
और ग्वाल सब गाइ चरैहैं मैं घर बैठो रैहौ।
सूर स्याम तुम सोइ रहौ तुम प्रात जान मैं दैहौ ।। ११५ ।।

बहुतै दुख हरि सोइ गयौ री ।
साँझहि तै लाग्यौ इहि बातहि क्रम क्रम तै मन बोधि लयौ री।
एक दिवस गयौ गाइ चरावन ग्वालनि साथ सबारे ।
अब तो सोइ रह्यौ है कहि कै प्रातहि कहा बिचारे !
यह तौ सब बलरामहि लागै सग ले गयौ लिवाइ ।
सूर नद यह कहत महरि सौ आवन दै फिरि धाइ ।। ११६ ।।

मैया री मोहि दाऊ टेरत।
मो कौं वनफल तोरि देत है आपुन गैयनि घेरत।
और ग्वाल सग कबहूँ न जैहौ वै सब मोहि खिझावत।
मैं अपने दाऊ सग जैहौं बन देखत सुख पावत।
आगैं दै पुनि ल्यावत घर कौ तू मोहि जान न देति।
सूर स्याम कहै जसुमति मैया हा हा करि करि केति ।। ११७ ।।

---

११४. जोटी = जोड़ी।
११५ भुरैहौ = धोखा खाऊँगा।
११६. मन बोधि लयौ = इत्मीनान कर लिया। बलरामहि लागै = बलराम का कसूर है। फिरि धाइ = दौड-फिरकर।
११७. केति = कितना ही ।

ाखि लियौ बलरामहि जसुमति।
आवहु लाल सुनहु हरि के गुन कालिहि तैं लँगरई करत अति।
स्यामहि जान देहु मेरें सग तू काहे डर पावति।
मैं अपने ढिग तैं नहि टारौं जियहिं प्रतीति न आवति।
हँसी महरि बल की बातैं सुनि बलिहारी या मुख की।
जाहु लिवाइ सूर के प्रभु कौ कहत बीर के रुख की॥ ११८ ॥

चरावत बृंदाबन हरि गाइ।
सखा लिए सँग सुबल स्रीदामा डोलत है सुख पाइ।
क्रीडा करत जहा तहा सब मिलि अति आनद बढाइ।
बगरि गई गैयाँ बन बीथिनि देखी अति बहुताइ।
कोउ गए ग्वाल गाइ बन घेरन कोउ गए बछुरु लिवाइ।
आपुहि रहे अकेले बन में कहुँ हलधर रहे जाइ।
बसी बट सीतल जमुनातट अतिहि परम सुखदाइ।
सूर स्याम तब बैठि बिचारत सखा कहाँ बिरमाइ॥ ११९ ॥

पाई पाई है रे भैया कुंज बृंद में टाली।
अब कै अपनी हटकि चरावहु जैहैं हटकी घाली।
आवहु बेगि सकल दुहुं दिसि तैं कत डोलत अकुलाने।
सुनि मृदु बचन देखि उन्नत कर हरषि सबै समुहाने।
तुम तौ फिरत अनत ही ढूँढत ये बन फिरति अकेली।
ह्वाँ की गाइ कौन पै लैहौ सघन बहुत द्रुम बेली।

---

११८ बीर के रुख की = भाई के मन की बात।

११९ बगरि गईं = फैल गईं। बीथिनि = गलियो मे। बिरमाइ = बिरम गये, अटक गये।

१२० टाली = गायो की टाल या समूह। हटकि = हटककर; मन-माने रास्ते न जाने देकर। उन्नत कर = उठाया हुआ हाथ (बुलाने की मुद्रा। समुहाने = सामने की ओर बढ़े।

सूरदास प्रभु मधुर बचन कहि ग्वालन सबहि बुलाए।
नृत्य करत आनँद गो चारन सबहि कृष्ण पै आए॥ १२० ॥

बलदाऊ कहि स्याम पुकार्‌यौ।
आवहु बेगि चलहु घर जैयै बनही मैं पुनि होत अँध्यारौ।
स्याम बोलि सखा हलधर कौ हँसे स्याम मुख चाहि।
बड़ी बेर भइ तुमहि कन्हैया गाइनि लेहु निबाहि।
टेरी देत चले सब बन तै गोधन दिए चलाइ।
सूरदास प्रभु राम स्याम दोउ ब्रजजन के सुखदाइ॥ १२१ ॥

हरि आवत गाइनि के पाछे।
मोर मुकुट मकराकृत कुंडल नयन बिसाल कमल तै आछे।
मुरली अधर धरन सीखत हैं बनमाला पीतांबर काछे।
ग्वाल बाल सब बरन बरन के कोटि मदन की छबि किए पाछे।
पहुँचे आइ स्याम ब्रजपुर मैं घरहि चले मोहन बल आछे।
सूरदास प्रभु दोउ जननी मिलि लेतिं बलाइ बोलि मुख बाछे॥ १२२ ॥

मैया हौं न चरैहौं गाइ।
सिगरे ग्वाल घिरावत मोसौं मेरे पाइ पिराइ।
जौ न पत्याहि पूछि बलदाउहि अपनी सौंह दिवाइ।
यह सुनि सुनि जसुमति ग्वालनि कौ गारी देति रिसाइ
मैं पठवति अपने लरिका कौ आवै मन बहराइ।
सूर स्याम मेरौ अति बालक मारत ताहि रिंगाइ॥ १२३ ॥

---

१२१ चाहि = देखकर। निबाहि = सँभालना।
१२२ काछे = काछकर पहने हुए। बल = बलराम। बोलि मुख बाछे = मुख से शुभ कामना करती हुई, वाचा बोलती हुई।

बल मोहन बन तैं दोउ आए।
जननि जसोदा मातु रोहिनी हरषि दुहुँनि दोउ कंठ लगाए।
काहैं आजु अबार लगाई काहे कमल बदन कुम्हिलाए।
भूख भए आजु दोउ भैया प्रात कलेऊ करन न पाए।
देखहु जाइ कहा जेवन कियौ जसुमति रोहिनि तुरत पठाई।
मैं अन्हवाए देति दुहुनि कौ तुम भीतर अति करहु चँडाई।
लकुट लियौ मुरली कर लीन्ही हलधर दियौ बिषान।
नीलांबर पीतांबर लीन्हे सैंति धरति करि प्रान।
मुकुट उतारि धरयौ मंदिर लै पोंछति है अंगधातु।
अरु बनमाल उतारति गर तैं सूर स्याम की मातु॥ १२४॥

अंग अभूषन जननि उतारति।
दुलरी ग्रीव माल मोतिनि की केउर लै भुज स्याम निहारति।
छुद्रावली उतारति कटि तैं सैंति धरति मन ही मन वारति।
रोहिनि भोजन करहु चँडाई बार बार कहि कहि करी आरति।
भूखे भए स्याम हलधर ए यह कहि अंतर प्रेम बिचारति।
सूरदास प्रभु मातु जसोदा पट लै दुहुँनि अंग रज झारति॥ १२५॥

राधा-कृष्ण का प्रथम मिलन

खेलन हरि निकसे ब्रज खोरी।
कटि काछनी पीतांबर ओढे हाथ लिए भौंरा चक डोरी।

---

१२४. जेवन = रसोई। चँडाई = जल्दी। सैंति = सहेजकर। करि प्रान = प्राणों के समान।

१२५. केउर = क्यूर या बिजायठ (बाहु-भूषण)। छुद्रावलि = किंकणी या करधनी। आरति = आतुरता का भाव।

१२६. काछनी = कसकर और दोनों छोर पीछे की ओर खोंस कर पहनी हुई धोती। भौंरा चक डोरी = चकई और उसे नचानेवाली डोरी।

मोर मुकुट कुंडल स्रवननि बर दसन दमक दामिनि छबि थोरी।
गए स्याम रबितनया कैं तट अंग लसति चंदन की खोरी।
औचक ही देखी तहँ राधा नयन बिसाल भाल दिए रोरी।
नील बसन फरिया कटि पहिरे बेनी पीठि रुचिर झकझोरी।
संग लरिकनी चलि इत आवति दिन थोरी अति छबि की गोरी।
सूर स्याम देखत ही रीझे नैन नैन मिलि परी ठगोरी॥ १२६॥

बूझत स्याम कौन तू गोरी।
कहाँ रहति काकी है बेटी देखी नहीं कहूँ ब्रज खोरी।
काहे कौ हम ब्रज तन आवतिं खेलति रहतिं आपनी पौरी।
सुनति रहतिं स्रवननि नँद ढोटा करत रहत माखन दधि चोरी।
तुम्हरौ कहा चोरि हम लैहैं खेलन चलौ संग मिलि जोरी।
सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि बातनि भुरई राधिका भोरी॥१२७॥

गइ बृषभानुसुता अपनै घर।
संग सखी सौं कहति चली यह को खेलै इनकैं वर।
बड़ो बेर भइ जमुना आए खीझति ह्वैहै मैया।
बचन कहति मुख, हृदयँ प्रेम सुख, मन हरि लियौ कन्हैया।
माता कही कहाँ हुती प्यारी कहाँ अबार लगाई।
सूरदास तब कहति राधिका खरिक देखि मैं आइ॥ १२८॥

मोहि दोहनी दै री मैया।
खरिक माहिँ अबही ह्वै आई अहिर दुहत अपनी सब गैया।

---

१२६. खोरी = त्रिपुंड या तिलक। फरिया = दुपट्टा। झकझोरी = झूमती या लटकती हुई। ठगौरी = मोहित होना।
१२७ पौरी = द्वार। भुरई = भुलाया। भोरी = भोली।

ग्वाल दुहत तब गाइ हमारी जब अपनी दुहि लेत।
घरिक मोहि लगिहै खरिका मैं तू आवै जनि हेत।
सोचति चली कुँवरि घर ही तै खरिका गइ समुहाइ।
कब देखौ वह मोहन मूरति जिन मन लियौ चुराइ।
देख्यौ जाइ तहाँ हरि नाही चकित भई सुकुमारि।
कबहूँ इत कबहूँ उत डोलति लागी प्रेम खभारि।
नंद लिए आवत हरि देखे तब पायौ बिस्राम।
सूरदास प्रभु अतर्जामी कीन्ह्यौ पूरन काम ॥ १२९ ॥

नंद गए खरिकहि हरि लीन्हे।
देखी तहाँ राधिका ठाढ़ी स्याम बुलाइ लई तहँ चीन्हे।
महर कह्यौ खेलहु तुम दोऊ दूरि कहूँ जनि जैहौ।
गनती करत ग्वाल गैयनि की मोहिं नियरे तुम रैहौ।
सुनु बेटी बृषभानु महर की कान्हहि लिए खिलाइ।
सूर स्याम कौ देखे रहिहौ मारै जनि कोउ गाइ ॥ १३० ॥

गगन गरजि घहराइ जुरी घटा कारी।
पौन झकझोर चपला चमक चहुँ ओर सुवन तन चितै नँद डरत भारी।
कह्यौ बृषभानु की कुँवरि सौ बोलि कै राधिका कान्ह घर लिए जारी।
दोउ घर जाहु सँग, भयौ नभ स्याम रँग, कुँवरि सौ कह्यौ बृषभानु बारी।
गए बन घन ओर नवल नँदनँद किसोर नवल राधा नए कुंज भारी।
अंग कँटकित भए मदन तिन तन जए सूर प्रभु स्याम स्यामा बिहारी ॥ १३१ ॥

---

१२९ हेत = फिक्र करके, प्रेमवश। समुहाइ = सामने पहुँची।
खभारि = घबराहट।

१३०. लिए खिलाइ = लेकर खिला।

१३१ सुवन = पुत्र। कँटकित = रोमांचित।

नवल किसोर नवल नागरिया।
अपनी भुजा स्याम भुज ऊपर स्याम भुजा अपनें उर धरिया।
क्रीडा करत तमाल तरुन तर स्यामा स्याम उमँगि रस भरिया।
यौ लपटाइ रहे उर उर ज्यौ मरकत मनि कंचन मे जरिया।
उपमा काहि देउँ को लायक मनमथ कोटि वारनें करिया।
सूरदास बलि बलि जोरी पर नदकुँवर बृषभानु दुलरिया ॥१३२॥

खेलन कें मिस कुँवरि राधिका नद महर घर आई।
सकुच सहित मधुरे करि बोली घर ही कुवर कन्हाई।
सुनत स्याम कोकिल सम बानी निकसे अति अतुराई।
माता सौं कछु करत कलह हे सी डारचौ बिसराई।
मैया री तू इनको चीन्हति बारंबार बताई।
जमुना तीर काल्हि मैं भूल्यौ बाँह पकरि लै आई।
आवति इहाँ तोहि सकुचति है मैं दै सौह बुलाई।
सूर स्याम गहि बाँह राधिका महरि निकट बैठाई ॥१३३॥

नामु कहा है तेरौ प्यारी।
बेटी कौन महर की है तू कहि सु कौन तेरी महतारी।
मे बेटी बृषभानु महर की मैया तुमको जानति।
जमुना तट बहु बार मिलन भयौ तुम नाहिन पहिचानति ?
ऐसी कही वाको मै जानति वै तौ बड़ी छिनारि।
महर बडौ लंगर सब दिन कौ हँसति देति मुख गारि।
राधा बोलि उठी बाबा कछु तुमसौ ढीठयौ कीन्ही ?
ऐस समरथ कब मै देखे हँसि प्यारी उर लीन्ही।

---

१३२. उर उर ज्यौ = आलिंगन की मुद्रा। जरिया = जड़ी हुई हो। वारनें करिया = न्यौछावर करना है।

१३३ मिस = ब्याज से। कलह = झगड़ा।

१३४ लगार = चंचल और ढीठ। ढीठयौ कीन्ही = ढिठाई की है। समरथ = बलवान्।

महरि कुँवरि सौ यह करि भाषति आउ करौ तेरी चोटी।
सूरदास हरषी नँदरानी कहति महरि हम जोटी॥ १३४॥

जसुमति राधा कुँवरि सँवारति।
बड़े बार सीमंत सीस के प्रेम सहित लै लै निरुवारति।
माँग पारि बेनीहि सँवारति गूँधी सुंदर भाँति।
गोरे भाल बिंदु चंदन मनौ इंदु प्रात रवि काँति।
सारी चीरि नई फरिया लै अपनै हाथ बनाइ।
अंचल सौ मुख पोंछि अंग सब आपुहि लै पहिराइ।
तिल चाँवरी बतासे मेवा दियौ कुँवरि की गोद।
सूर स्याम राधा तन चितवति जसुमति मन मन मोद॥१३५॥

राधे महरि सौ कहि चली।
आनि खेलौ रहसि प्यारी स्याम तुम हिलमिली।
बोलि उठे गुपाल राधा सकुच जिय कत करति।
मै बुलाऊँ नही आवति जननि कौं कत डरति।
मात जसुदा देखि तोकौ करति कितनौ छोह।
सुनत हरि की बात प्यारी रही मुख तन जोहि।
हँसि चली वृषभानु तनया भई बहुत अबार।
सूर प्रभु चित तैं टरत नहि गई घर कैं द्वार॥ १३६॥

---

१३४ करौ तेरी चोटी = तेरी वेणी बना दूँ। कहति .. जोटी = कहती हैं कि तेरी मा और मै दोनो जोडी या मित्र हैं।

१३५ सीमंत = सिर के मध्य का भाग जहाँ माँग बनाई जाती है। निरुवारति = एछती है। फरिया = ओढ़नी। तिल चाँवरी = तिल और चावल जो सौभाग्य के सूचक माने जाते हैं।

१३६ रहसि = सुख-पूर्वक। छोह = स्नेह।

बूझति जननि कहा हुति प्यारी।
किन तेरें भाल तिलक रचि कीन्हौ किहिँ कच गूदि माग सिर पारी।
खेलन रही नद के आगन जसुमति कही कुवरि ह्या आ री।
तिल चावरी गोद करि दीन्ही फरिया दई फारि नव सारी।
मेरौ नाँव बूझि बाबा कौ तेरौ बूझि दई हँसि गारी।
मो तन चितै, चितै ढोटा तन, कछु सबिता सौ गोद पसारी।
यह सुनिकै वृषभान मुदित चित हँसि हँसि बूझत बात दुलारी।
सूर सुनत रस सिध बढ्यौ अति दपति मन मै यहै बिचारी ॥१३७॥

मेरे आग महरि जसोदा मया री तोहि गारी दीन्ही।
वाकी बात सबै मै जानति वै जैसी तैसी मै चीन्ही।
तो कौ कहि पुनि कह्यौ बबा कौ बडौ धूत बृषभानु।
तब मै कह्यौ ठग्यौ कब तुमकौ हँसि लागी लपटान।
भली कही तै मेरी बेटी लयौ आपनौ दाउँ।
जो मोहि कह्यौ सबै उनके गुन हँसि हँसि कहति सुभाउ।
फेरि फेरि बूझनि राधा सौ सुनत हँसतिँ सब नारि
सूरदास वृषभानुघरनि जसुमनि कौ गावति गारि॥ १३८॥

वंशी-वादन

जब हरि मुरली अधर धरत।
खग मोहे मृगयूथ भुलाने निरखि मदन छबि छरत।
पसु मोहे सुरभीहू थकीं तृन दंतहि टेक रहत।

---

१३७. हुति = थी। कच = केश। सबिता = सूर्य। गोद पसारी = भिक्षा माँगी, प्रार्थना की।

१३८. धूत = चचल और ठग। ठग्यौ कब तुमको = तुम्हे कब ठगा (हास्य में)। दाउँ = बदला।

१३९. मदन . . .छरत = कामदेव भी छले जाते है।

सुक सनकादिक सकल मन मोहे ध्यानिहुँ ध्यान बहत।
सूरजदास भाग है तिनके जे या सुखहिं लहत॥ १३९॥

अंगनि की सुधि बिसरि गई।
स्याम अधर मृदु सुनत मुरलिका चकित नारि भई।
जो जैसें सो तैसें रहि गईं सुख दुख कह्यौ न जाइ।
लिखी चित्र-सी सूर सो रहि गइं एकटक पल बिसराइ॥१४०॥

स्याम हृदय बर मोतिनि माला। बिथकित भई निरखि ब्रजबाला।
स्रवन थके सुनि बचन रसाला। नैन थके दरसन नँदलाला।
कंबु कंठ भुज नैन बिसाला। कर केयूर कंचन नग जाला।
पल्लव हस्त मुद्रिका भ्राजै। कौस्तुभ मनि हृदयस्थल छाजै।
रोमावली बरनि नहिं जाई। नाभिस्थल की सुंदरताई।
कटि किंकिनी चंद्रमनि सजुत। पीतांबर कटि तट छबि अद्भुत।
जुगल जंघ की पटतर को है। तरुनी मन धीरज को जोहै।
जानु जानु की छबि न सम्हारैं। नारि निकर मन बुद्धि बिचारैं।
रतन जटित कंचन कल नूपुर। मंद मंद गति चलत मधुर सुर।
जुगल कमल पद नख मनि आभा। संतनि मन संतत यह लाभा।
जो जेहिं अंग सो तहाँ भुलानी। सूर स्याम गति काहुँ न जानी॥१४१॥

देखि री देखि आनँद कंद।
चित्त चातक प्रेमघन, लोचन चकोरनि चंद।

---

१३९. ध्यान बहत = ध्यान टल जाता है।
१४१. कंबु = शंख। कौस्तुभ = पुराणों में उल्लेख किया गया एक रत्न। धीरज को जोहै = धैर्य की परीक्षा करते हैं। जानु... सम्हार = जंघों की छबि का भार जंघे नहीं सम्हाल पाते।

चलित कुंडल गंड मंडल झलक ललित कपोल।
सुधा सर जनु मकर क्रीड़त इंदु डह डह डोल।
सुभग कर आनन समापै मुरलिका इहिं भाइ।
मनो उनै अंभोज भाजन लेत सुधा भराइ।
स्याम देह दुकूल दुति छबि लसति तुलसी माल।
तड़ित घन संजोग मानो सेनिका सुक जाल
अलक अबिरल चारु हास बिलास भृकुटी भंग।
सूर हरि की निरखि सोभा भई मनसा पग॥ १४२॥

देख माई सुंदरता कौ सागर।
बुधि बिबेक बल पार न पावत मगन होत मन नागर।
तनु अति स्याम अगाध अंबुनिधि, कटिपट पीत तरंग।
चितवत चलत अधिक रुचि उपजति भँवर परत सब अंग।
नैन मीन मकराकृत कुंडल भुज बल सुभग भुजंग।
मुकुत माल मनौ मिली सुरसरी द्वै सरिता लिएँ संग।
मोर मुकुट मनिगन आभूषन कटि किंकिनि नख चंद।
मनु अडोल बारिधि में बिंबित राका उडुगन बृन्द।
बदन चंद्रमंडल की सोभा अवलोकत सुख देति।
जनु जलनिधि मथि प्रगट कियौ ससि स्री अरु सुधा समेति।

---

१४२ गंड मंडल = कनपटी। मकर = मगर (जलजीव)। इंदु.. डोल = चंद्रमा डोलता-सा है। (यहाँ कपालों की उपमा चंद्रमा से दी गई है, जो कुंडलों की छाया पड़ने से डोलता-सा मालूम देता है।) अंभोज = कमल। भाजन = पात्र। अबिरल = घनी। भृकुटी भंग = भौंहों का बल खाना। मनसा पग = मन से स्तब्ध हो गई।

१४३. अंबुनिधि = समुद्र। कटि तरंग = कटि का पीत वस्त्र ही उस समुद्र की लहर है। सुंदर चितवन और चलन (गति) ही भौंर है। नैन मीन हैं, कुंडल मकर है, बलिष्ठ भुजाएँ भुजंग हैं। मोतियों की माला मानो गंगा दो नदियों (यमुना-सरस्वती) के साथ मिली हैं।

देखि सो रूप सकल गोपी जन रही बिचारि बिचारि।
तदपि सूर तरि सकी न सोभा रही प्रेम पचिहारि ॥ १४३ ॥

बने बिसाल हरि लोचन लोल।
चितै चितै हरि चारु बिलोकनि मानहुँ मागत है मन ओल।
अधर अनूप नासिका सुंदर कुंडल ललित सुदेस कपोल।
मुख मुसकात महाछबि लागति स्रवन सुनत सुठि मीठे बोल।
चितवन रहतिं चकोर चंद्र ज्यौं नैकु न पलक लगावत डोल।
सूरदास प्रभु कैं बस ऐसैं दासी सकल भई बिनु मोल ॥ १४४ ॥

तरुनी निरखि हरि प्रति अंग।
कोउ निरखि नख इंदु भूली कोउ चरन जुग रंग।
कोउ निरखि नपु रही थकि कोऊ निरखि जुग जान।
कोउ निरखि जुग जंघ सोभा करति मन अनुमान।
कोउ निरखि कटि पीत कछनी मेखला रुचिकारि।
कोउ निरखि हृद नाभि की छबि डारि तन मन वारि।
रुचिर रोमावली हरि कैं चारु उदर सुदेस।
मनौ अलि सेनी बिराजति बनै एकै भेस।
रहीं एकटक नारि ठाढी करति बुद्धि बिचार।
सूर आगम कियौ नभ तैं जमुन सूच्छम धार ॥ १४५ ॥

सखी री सुंदरता कौ रंग।
छिन छिन माहि परति छबि औरै कमलनयन के अंग।

---

१४४. ओल = अधक।

१४५ जुग रंग = दो रंगों के चरण (जावक लगे हुए)। मेखला = कर-धनी। सूर ... धार = हरि के उदर में रुचिर रोमावली ऐसी शोभा पाती है मानो आकाश से यमुना की सूक्ष्म (पतली) धारा उतरी हो।

परिमित करि राख्यौ चाहति हे ठगि डोलनि है सग।
चलत निमेष विशेष आनियत भूलि भई मति भग।
स्याम सुभग के ऊपर वारौ आली कोटि अनग।
सूरदास कछु कहत न आवै गिरा भई गति पग॥ १४६ ॥

गोपी तजि लाज सग स्याम रग भूली।
पूरन मुखचद्र देखि नैन कुमुद फूली।
कीधौं नव जलद स्वाति चातक मन लाए।
किधौ नारि बृद सीप हृदय हरष पाए।
रबि छबि कुंडल निहारि पंकज बिकसाने।
किधौ चक्रवाक निरखि अति ही रति माने।
कीधौ मृग जूथ जुरे मुरली धुनि रीझे।
सूर स्याम मुख निहारि छबि कै रस भीजे॥ १४७ ॥

स्याम कर मुरली अतिहि बिराजति।
परसति अधर सुधारस प्रगटति मधुर मधुर सुर बाजति।
लटकत मुकुट भौह छबि मटकत नैन सैन अति छाजति।
ग्रीव नवाइ अटकि बसी पर कोटि मदन छबि लाजति।
लोल कपोल झलक कुडल की यह उपमा कछु लागति।
मानहुँ मकर सुधा सर क्रीडत आपु आप अनुरागत।
बृन्दाबन बिहरत नँदनदन ग्वाल सखा सँग सोहत।
सूरदास प्रभु की छबि निरखत सुर नर मुनि सब मोहत॥ १४८ ॥

---

१४६ परिमित ... सग = छबि को अलग करके रखना चाहती हूँ पर स्वय ही उसके साथ-साथ लगी रहती हूँ (अत अलग नही कर पाती)।

१४८ लटकत = झुकता है। छाजति = शोभा देती है। आपु आप = अपने मे।

जब तैं बसी स्रवन परी।
तब ही तैं मन और भयौ सखि मो तन सुधि बिसरी।
हौ अपने अभिमान रूप यौवन कैं गर्व भरी।
नैकु न कह्यौ कियौ सुनि सजनी बादिहि आपु ढरी।
बिनु देखैं अब स्याम मनोहर जुग भरि जाति घरी।
सूरदास सुन आरज पथ तैं कछू न चाड सरी॥ १४९॥

मुरली धुनि स्रवननि सुनि भवन न रह्यौ परै।
ऐसी को चतुर नारि धीरज मन धरै।
खग मृग तरु सुर नर मुनि सिव समाधि टरै।
अपनी गति तजी पौन सरितहु न ढरै।
मोहन के मन कौ सो अपने बस करै।
सूरदास सप्त सुरन सिंधु सुधा भरै॥ १५०॥

मुरली मोहे कुवर कन्हाई।
अचवति अधर-सुधा बस कीन्हे अब हम कहा करैं कहि माई।
सरबसु हरयो कबहुँ को ऐसे रहत न देति अघाई।
गाजति बाजति चढी दुहूँ कर अपने सब्द न सुनति पराई।
जिहि तन अनल दह्यौ कुल अपनौ तासौ कैसें होति भलाई।
अब कहि सूर कौन बिधि कीजै बन की ब्याधि माझ घर आई॥१५१॥

मुरली तऊ गोपालहि भावति।
सुनि री सखी जदपि नँदनंदन नाना भाँति नचावति।

---

१४९. बादिहि = व्यर्थ ही। आरज पथ = लोक-मर्यादा। चाड सरी = कार्यसिद्धि हुई।

१५० सप्त सुरन = सातो स्वरो मे सुधा का समुद्र भरती है।

१५१ गाजति = (गर्व से) गरजती है। बन की ब्याध = बाँसुरी जो बाँस की बनती है। बास बन को जलानेवाले प्रसिद्ध हैं।

राखति एक पाइ ठाढ़े करि अति अधिकार जनावति।
कोमल अँग आज्ञा करवावति कटि टेढ़ी ह्वै आवति।
अति आधीन सुजान कनौडे गिरिधर नार नवावति।
आपुन पौढ़ि अधर सैज्या पर कर सौं पद पलुटावति।
भृकुटी कुटिल कोप नासा पुट हम पर कोप कुपावति।
सूर प्रसन्न जानि एकहूँ छन अधर सुसीस डोलावति॥१५२॥

सखी री मुरली लीजै चोरि।
जिन गोपाल कीन्हे अपनै बस प्रीति सबनि की तोरि।
छिन इक घोरि फोरि वसुतासुर धरत न कबहूँ छोरि।
कबहूँ कर अधरनि पर कबहूँ कटि मैं खोसत जोरि।
ना जानौ कछु मेलि मोहिनी राखी अग अँजोरि।
सूरदास प्रभु कौ मन सजनी बँध्यौ राग की डोरि॥१५३॥

ऐसौ गोपाल निरखि तन मन धन वारौ।
नव किसोर मधुर मूरति सोभा उर धारौ।
अरुन तरुन कमल नैन मुरली कर राजै।
ब्रजजन मनहरन बेनु मधुर मधुर बाजै।
ललित त्रिभंग सुंदर तन बनमाला सोहै।
अति सुदेस कुसुम पाग उपमा कौ को है।
चरन रुनित नूपुर कटि किंकिनि कल कूजै।
मकराकृत कुंडल छबि सूर कौन पूजै॥१५४॥

---

१५२. कटि आवति = कमर टेढ़ी हो जाती है। कनौड = भृत्य। नार = गर्दन। सूर डोलावति = सूरदास कहते हैं कि एक क्षण भी श्याम को हम पर प्रसन्न हुआ जानकर वह उनके अधर फड़का देती है और सिर झुला देती है (वंशी बजाते हुए अधर काँपते और सिर हिलता है, मानो कृष्ण हम पर कोप कर उठते हैं)।

१५३. अँजोरि = बटोरकर। राग = १. संगीत, २. प्रेम।

अलकनि की छबि अलिकुल गावत।
खजन मीन मृगज लज्जित भए नैन नचावनि गतिहि न पावत।
मुख मुसकानि आनि उर अंतर अंबुज बुधि उपजावत।
सकुचत अरु बिगसत वा छबि पर अनुदिन जनम गँवावत।
पूरत नही सुभग स्यामल कौ जद्यपि जलधर ध्यावत।
बसन समान होत नहि हाटक अगिनि झाँप दै आवत।
मुकतादाम बिलोकि बिलखि करि अवलि बलाक बनावत।
सूरदास प्रभु ललित त्रिभगी मनमथ मनहि लजावत ॥१५५॥

श्री राधा का यशोदा के घर पुनरागमन

सुता महर बृषभान की नँद सदनहि आई।
गृह द्वारे ही अजिर मैं गो दुहत कन्हाई।
स्याम चितै मुख राधिका मन हरष बढाई।
राधा हरि मुख देखि कै तन सुरति भुलाई।
महरि देखि कीरति सुता तेहि लियौ बुलाई।
दंपति कौ मुख देखि कै सूरज बलि जाई ॥ १५६ ॥

---

१५५ अलिकुल = भौरो के दल। अंबुज = कमल। कृष्ण की मुसक्यान को हृदय मे सोचकर कमल सकुचाते (लज्जा से) और खिलते (हर्ष मे) रहते है। जलधर = बादल। बादल चेष्टा करते है पर स्याम के सुभग वर्ण को नही पाते। अगिनि झाँप दै = अग्नि म तपकर। हाटक = स्वर्ण। मुकुतादाम = मुक्ता माला को देखकर बलाका पक्षी खिन्न हो जाता है, समता करने के लिए वह अपना दलबल इकटठा करता है 'अवलि' बनाता है (पर व्यर्थ)।

१५६ अजिर = आँगन। कीरति सुता = राधा।

आजु राधिका भोर ही जसुमति कै आई।
महरि मुदित हँसि यौ कह्यौ मथि भान दोहाई।
आयसु लै ठाढी भई कर नेति सुहाई।
रीतौ माट बिलोवई चित जहा कन्हाई।
उनके मन की कहा कहौं ज्यौं दृष्टि लगाई।
लेइ आन्यौ एक बृषभ सो गैया बिसराई।
नैननि मै जसुमति लखी दुहुँ की चतुराई।
सूरदास दम्पति दसा बरनी नहि जाई॥ १५७॥

महरि कह्यो, री लाडिली काहि मथन सिखायौ।
कहँ मथनी कहँ माट है चित कहा लगायौ।
अपने घर यौही मथै करि प्रगट दिखायौ।
की मेरे घर आइकै ह्या सब बिसरायौ।
मथन नही मोहि आवई तुम सौह दिवायौ।
तेहि कारन मै आइकै तुव बोल रखायौ।
तब नँद घरनी मथि दह्यौ इहि भाति बतायौ।
सूर निरखि मुख स्याम कौ तहँ ध्यान लगायौ॥ १५८॥

दुहत स्याम गैया बिसराई।
नोआ लै पग बाधि बृषभ कौ दोहनि मागत कुवर कन्हाई।
ग्वाल एक दोहनि लै दीन्ही दुहौ स्याम अति करौ चँडाई।
हँसत परसपर तारी दै दै आजु कहा तुम रहे भुलाई।
कहत सखा हरि सुनत नही सो प्यारी सौं रहे चित अरुझाई।
सूर स्याम राधा तन चितवत बडे चतुर की गइ चतुराई॥ १५९॥

---

१५७. मथि भान दोहाई = बृषभानु की शपथ, तू दही मथ।

१५८ लाडिली = प्यारी (विनोद से); लडैती। तुव बोल रखायं = तुम्हारी बात रक्खी।

१५९. नोआ = गाय का पैर बाँधने की रस्सी।

राधा ये दृग हैं री तेरे।
वैसे हाल मथत दधि कीन्हे हरि मनों लिखे चितेरे।
तेरौ मुख देखत ससि लाजै और कहौ को बाचै।
नैना तेरे जलज जिते हैं खंजन ते अति नाचे।
चपला तै चमकति अति प्यारी कहा करौगी स्यामहि।
सुनहु सूर ऐसे दिन खोवति काज नही तेरे धामहि? ॥१६०॥

बार बार तू जनि ह्या आवै।
मैं कहा करौ सुतहि नहि बरजति घर तै मोहि बोलावै।
मो सौ कहत तोहि बिन देखै रहत न मेरौ प्रान।
छोह लगति मोको सुनि बानी महरि तुम्हारी आन।
मुंह पावति तबही लौ आवति औरै लावति मोहि।
सूर समुझि जसुमनि उर लाई हँसति कहति हौ तोहि ॥१६१॥

हँसति कह्यौ मै तो सौ प्यारी।
मन मैं कछू बिलगु जनि मानहु मै तेरी महतारी।
बहुतै दिवस आज तू आई राधा मेरे धाम।
महरि बड़ी मे सुघरि सुनी है कछु सिखयौ गृहकाम?
मैया जब मोहि टहल कहति कछु खिझत बबा बृषभान।
सूर महरि सौं कहति राधिका मानौ अतिहि अजान ॥ १६२ ॥

---

१६० खजन ते अति = खजन की अपेक्षा अधिक चचल है। काज नही तेरे धामहि = क्या तेरे घर पर कोई काम नही है (विनोद से)।

१६१. औरै लावति मोहि = मुझ पर तुम कुछ और ही दोषारोपण करती हो। आन = शपथ। मुँह पावति = इच्छा देखती हूँ। हँसति = विनोद।

१६२ सघरि = कुशल, निपुण, दक्ष। टहल = गृहस्थी का काम।

सैन दै प्यारी लई बोलाइ ।
खेलन कौ मिस करिकै निकस खरिकहि गए कन्हाइ ।
जसुमति की कहि प्यारी निकसी घर की नाउँ सुनाइ ।
कनक दोहनी लिए तहँ आई जहँ हलधर कौ भाइ ।
तहाँ मिली सब संग सहेली कुँवरि कहाँ तू आइ ।
प्रातहिं धेनु दुहावन आई अहिर नहीं कोउ पाइ ।
तबहि गई मै ब्रज उतावली ल्याई ग्वाल बुलाइ ।
सूर स्याम दुहि देन कह्यौ सुनि राधा गइ मुसुकाइ ॥१६३॥

मोहन कर तें दोहनि लीन्ही गोपद बछरा जोरे ।
हाथ धेनु थन बदन त्रिया तन छीर-छाछि छल छोरे ।
आनन रही ललित पय छींटें छाजति छबि तृन तोरे ।
मनु निकसे निकलंक कलानिधि दुग्ध सिंधु के बोरे ।
दै घूँघट पट ओट नील हँसि कुवरि मुदित मुख मोरे ।
मनौ सरद ससि कौ मिलि दामिनि घेरि लियौ घन घोरे ।
इहि बिधि रहसत बिलसत दंपति हेत हियैं नहिं थोरे ।
सूर उमँगि आनंद सुधानिधि मनौ बिलावल फोरे ॥१६४॥

धेनु दुहत अतिही रति बाढी ।
एक धार दोहनि पहुँचावत एक धार जहँ प्यारी ठाढी ।

---

१६३ जसुमति . सुनाइ = राधा यशोदा से यह कहकर चली कि मैं घर जा रही हूँ । सूर कह्यो = गोपियों ने पूछा, क्या श्याम ने दुह देने को कहा है ? यह सुनकर राधा मुस्कुरा उठी ।

१६४ छीर-छाछि छल छोरे = चालाकी से दूध की धार राधा के मुख पर छोडी । तृन तोरे = लज्जित होकर । मनु बोरे = मानो क्षीरसमुद्र में डूबे हुए निष्कलंक चंद्रमा उदय हुए ।

मोहन कर तें धार चलत पय मोहनि मुख अति ही छबि गाढ़ी।
मानौ जलधर जलधार बृष्टि लघु पुनि पुनि प्रेम चंद पर बाढ़ी।
सखी संग निरखत यह छबि भईं ब्याकुल मनमथ की डाढ़ी।
सूरदास प्रभु के बस भईं सब भवन काज तें भईं उचाढ़ी ॥१६५॥

हरि सौ धेनु दुहावति प्यारी।
करति मनोरथ पूरन मन बृषभानु महर की बारी।
दूध धार मुख पर छबि लागति सो उपमा अति भारी।
मानौ चंद कलंकहि धावत जहँ तहँ बूंद सु धारी।
हाव भाव रस मगन हूं दोऊ छबि निरखति ललिता री।
गौ दोहन सुख करत सूर प्रभु तीनिहुँ भवन कहा री ॥१६६॥

दुहि दीनी राधा की गैया।
दोहनि नहीं देत करतें हरि हा हा करति परति है पैंया।
ज्यौं ज्यौं प्यारी हा हा बोलति त्यौं त्यौं हँसत कन्हैया।
बहुरि करौ प्यारी तुम हा हा दैहौं नंद दुहैया।
तब दीन्ही प्यारी कर दोहनि हा हा बहुत करैया।
सूर स्याम रस हाव भाव करि दीन्ही कुवरि पठैया ॥१६७॥

चीर-हरण

ब्रज घर गई गोप कुमारि।
नैंकुहूँ कहूँ मन न लागत काम धाम बिसारि।

---

१६५ मानौ ... बाढ़ी = मानो जलधर (श्याम) से जलधार निकल-कर बार-बार प्रेमपूर्वक चंद्रमा की ओर बढ़ रही हो। बृष्टि लघु = हल्की वर्षा। उचाढ़ी = उचाट, वमन, उन्मन।
१६६ मानौ ... धारी = मानो चंद्रमा अपना कलंक धो रहा हो, वही बूंदें जहाँ-तहाँ पड़ी हुई हैं।
१६७ हा हा बोलति = दीनता और आग्रहपूर्वक माँगती है।

मात पितु कौ डर न मानति सुनति नाही गारि।
हठ करति बिरुझाति तब जिय जननि जानति बारि।
प्रातही उठि चली सब मिलि जमुनतट सुकुमारि।
सूर प्रभु व्रत देखि इनकौं नहि न परत सँभारि ॥१६८॥

अति तप करति घोषकुमारि।
कृष्न पति हम तुरत पावै कामना करैं नारि।
नैन मूदति दरस कारन स्रवन सब्द बिचारि।
भुजा जोरति अक भरि हरि ध्यान उर अँकवारि।
सरद ग्रीषम डरति नाही करति तप तनु गारि।
सूर प्रभु सर्वज्ञ स्वामी देखि रीझे भारि ॥१६९॥

ब्रज बनिता रवि कौ कर जोरै।
सीत भीत नहि करति छहौ रितु त्रिबिध काल जल खोरै।
गौरीपति पूजति तप साधति करति रहति नित नेम।
भोग रहित निसि जाग चतुरदसि जसुमति सुत कैं प्रेम।
हमकौ देहु कृष्न पति ईस्वर और नही मन आन।
मनसा बाचा क्रमना हमरें सूर स्याम कौ ध्यान ॥१७०॥

नीकैं तप कियौ तनु गारि।
आपु देखत कदम पर चढि मानि लई मुरारि।

१६८—तब बारि = तब माता समझती है कि यह अभी बच्ची है, बाल-हठ करती है।

१६९ नैन अँकवारि = दर्शन के लिए आँखे मूँदती, श्रवणो से शब्द सुनना चाहती और आलिगन का ध्यान करके, अपनी भुजाओं को (आलिगन की मुद्रा मे) जोड़ती है। तनु गारि = शरीर को गलाकर।

१७० खोरैं = स्नान करती हैं।

बर्ष भर ब्रत नेमि सजम स्रम कियौ मोहि काज।
कैसेंहू मोहिं भजै कोऊ मोहिं बिरद की लाज।
धन्य ब्रत इन कियौ पूरन सीत तपनि निवारि।
कामना करि भजै मोकौ नव तरुनि ब्रज नारि।
कृपानाथ कृपाल भए तब जानि जन की पीर।
सूर प्रभु अनुमान कीन्हौ हरौ इनकौ चीर॥१७१॥

आपु कदम चढ़ि देखत स्याम।
बसन अभूषन सब हरि लीन्हे बिना बसन जल भीतर बाम।
मूदति नयन ध्यान धरि हरि कौ अन्तरजामी लीन्हौ जान्हि।
बार बार सविता सौ बिनवैं हम पावैं पति सुन्दर कान्ह।
जल तैं निकसि आइ तट देख्यौ भूषन चीर तहाँ कछु नाहि।
इत उत हेरि चकित भईं सुन्दरि सकुचि गईं फिरि जलही माहिं।
नाभि प्रजत नीर मैं ठाढी थर थर अग कँपतिं सुकुमारि।
को लै गयौ बसन आभूषन सूर स्याम उर प्रीति बिचारि॥१७२॥

आवहु निकसि घोषकुमारि।
कदम पर तैं दरस दीन्हौ गिरिधरन बनवारि।
नैन भरि ब्रत फलहिं देख्यौ फरचौ है द्रुमडार।
ब्रत तुम्हारौ भयौ पूरन कह्यौ नद कुमार।
सलिल तैं सब निकसि आवहु बृथा सहतिं तुषार।
देत हौ किन लेहु मो मौ चीर चोली हार।
बाँह टेकि बिनय करौ मोहिं कहत बारबार।
सूर प्रभु कह्यौ मेरे आगे आइ करहु सिंगार॥१७३॥

---

१७१ बिरद = यश, बाना। सीत तपनि = शीत और घाम।
१७३. नैन डार = आँख भरकर ब्रत के फल (श्रीकृष्ण) को देखा जो कदम्ब की डाल पर बैठे हुए थे।

दृढ़ ब्रत कियौ मेरे हेत ।
धन्य धनि कह्यौ नंदनंदन जाहु सबै निकेत।
करौ पूरन काम तुम्हरौ सरद रास रमाइ।
हरष भईं यह सुनत गोपी रही सीस नवाइ।
सबनि कौ अँग परत कीन्हौ ब्रत कियौ तनु गारि ।
सूर प्रभु सुख दियौ मिलि कै ब्रज चली सुकुमारि ।।१७४।।

पनघट-प्रसंग

पनघट रोकेहिँ रहत कन्हाइ।
जमना जल कोउ भरन न पावति देखत ही फिरि जाइ।
तबहिँ स्याम इक बुद्धि उपाई आपुन रहे छपाइ।
तहँ ठाढ़े जे सखा सँग के तिनकौ लिए बोलाइ।
बैठारे ग्वालनि कौ द्रुम तर आपुन फिरि फिरि देखत।
बड़ी बार भई कोउ न आई सूर स्याम मन लेखत ।।१७५।।

युवति इक आवत देखी स्याम।
द्रुम के ओट रहे हरि आपुन जमना-तट गई बाम ।
जल हलोरि गागरि भरि नागरि जबही सीस उठायौ।
घर कौ चली जाइ ता पाछे सिर तैं घट ढरकायौ।
चतुर ग्वालि कर गह्यौ स्याम कौ कनक लकुटिया पाई।
औरनि सौं करि रहे अचगरी मो सौं लगत कन्हाई।
गागरि लै हँसि देति ग्वालि कर रीतौ घट नहिं लैहौं।
सूर स्याम ह्याँ आनि देहु भरि तबहिं लकुट कर दैहौं ।।१७६।।

---

१७४. सरद रास रमाइ = शरत्काल में रास रचकर।
१७५. उपाई = निकाली, उपार्जित की, सोची। लेखत = विचार करते हैं।
१७६. मो सौं लगत = मुझे छेड़ते हो।

घट भरि देहु लकुट तब दैहौ।
हम हू बडे महर की बेटी तुमकौ नही डरैहौ।
मेरी कनक लकुटिया दैरी मै भरि दैहौ नीर।
बिसरि गई सुधि ता दिन की तोहि हरे सबनि के चीर।
यह बानी सुनि ग्वारि बिबस भई तन की सुधि बिसराइ।
सूर लकुट कर गिरत न जानी स्याम ठगौरी लाइ ॥१७७॥

घट भरि दियौ स्याम उठाइ।
नैकुँ तन की सुधि न ताकौं चली ब्रज समुहाइ।
स्यामसुन्दर नयन भीतर रहे आइ समाइ।
जहा जहँ भरि दृष्टि देखै तहा तहा कन्हाइ।
उतहि तैं एक सखी आई कहति कहा भुलाइ!
सूर अब ही हँसत आई चली कहा गवाँइ ॥१७८॥

आवत ही जमुना भरे पानी।
स्याम बरन काहू कौ ढोटा निरखि बदन घर गई भुलानी।
उन मो तन मै उन तन चितयौ तब ही तैं उन हाथ बिकानी।
उर धकधकी टकटकी लागी तन ब्याकुल मुख फुरति न बानी।
कह्यौ मोहन मोहनि तू को है या ब्रज में नहि मै पहचानी।
सूरदास प्रभु मोहन देखत जनु बारिधि जल बूद हिरानी ॥१७९॥

मोकौं देहु न मेरी गुडुरी।
लै जैहों धरि जसुमति आगे आवहु री सब मिलि एक झुंड री।

---

१७७. सूर ... लाइ = गोपी ने लकुट हाथ से गिरते नही जाना, श्याम ने इस प्रकार उसे मोहित कर दिया।

१७८. चली कहा गवाँइ = क्या खोकर जा रही है? तू कुछ भूली हुई-सी है।

१७९. फुरति = स्फुरित होना, साफ-साफ शब्द निकलना। जनु .. हिरानी = मानो बूँद समुद्र के जल मे खो गई।

काहू नही डरात कन्हाई बाट घाट तुम करत अचगरी।
जमुना दह ेंडुरी फटकारी अरु फोरी सब सिर की गगरी।
भली करी यह कुँवर कन्हाई आजु मेटिहौ तुम्हरी लँगरी।
चली सूर जसुमति के आगे उरहन लै तरुनी ब्रज सिगरी ॥१८०॥

सुनहु महरि तेरो लाडिलौ अति करत अचगरी।
जमुन भरन जल हम गई तहँ रोकत डगरी।
सिर तै नीर ढरावई फोरी सब गगरी।
गेडुरि दइ फटकारि कै हरि करत है लँगरी।
नित प्रति ऐसेइ ढँग करै, हम सौ कहै अगरी।
अब बसवास नही बनै इहिँ तुव ब्रज नगरी।
आपु गयौ चढ़ि कदम ही चितवत रहि मगरी।
सूर स्याम ऐसैहि सदा हम सौ करै झगरी ॥१८१॥

मै जानति हौ ढीठ कन्हैया।
आवन तौ घर देहु स्याम कौ जैसी करौ सजैया।
मो सौ करत ढिठाई मोहन मै वाकी हौ मैया।
और न काहू कौ वह मानत कछु सकुचत बल भैया।
अब जौ जाउँ कहा तेहिँ पावौ का सौ देइ धरैया।
सूर स्याम दिन दिन लगर भयौ दूरि करौ लँगरैया ॥१८२॥

जसुमति यह कहि कै रिस पावत।
गोहिनि करति रसोई भीतर कहि कहि तिनहि सुनावति।

---

१८०. गेडुरी = घडे के नीचे, सिर पर रखने की मडलाकार रस्सी। अक्सर यह पयाल की बनती है। फटकारी = फेक दी। लँगरी = उद्धतपन।

१८१. डगरी = रास्ता। हम . . . अगरी = तू हमसे कहती है 'अगरी' चट या होशियार। बसवास = साथ का रहना।

१८२. देइ धरैया = पकडाई देगा।

गारी देत वहू बेटिन को व धाई हचा आवति।
हा हा करति सबनि सौ मैं ही कैसेहु खूट छँडावति।
जाति पाति सौ कहा अचगरी यह कहि सुतहि धिरावति।
सूर स्याम को सिखवत हारी मारेहूँ लाज न आवति ॥१८३॥

तू मोही कौ मारन जानति।
उनके चरित कहा कोउ जानै उनहि कही तू मानति।
कदम तीर तैं मोहि बुलायौ गढि गढि बातै बानति।
मटकत गिरी गागरी सिर तै अब ऐसी बुधि ठानति।
फिरि चितई तू कहा रह्यौ कहि मैं नहि तो कौ जानति।
सूर सुतहि देखत ही रिस गई मुख चूमति उर आनति ॥१८४॥

झूठेहि सुतहि लगावतिँ खोरि।
मै जानति उनके ढँग नीकै बातै मिलवतिँ जोरि।
वे जौवन मद की सब मातीं कहैं मेरौ तनक कन्हाई।
आपुहि फोरि गागरी सिर तैं उरहन लीन्हे आई।
तू उनकै ढिग जात कितहि है वै पापिनि सब सारि।
सूर स्याम अब कह्यौ मानि तू है सब ढीठ गुवारि ॥१८५॥

राधा सखियनि लई बुलाइ।
चलहु जमुना जलहि जैयै चली सब सुख पाइ।
सबनि एक एक कलस लीन्हौ तुरत पहुँची जाइ।
तहा देख्यौ स्यामसुन्दर कुँवरि मन हरषाइ।

---

१८३. खूट छँडावति = पल्ला छुड़ाती हूँ; निबटती हूँ। जाति पाति सौं = अपनी जातिवालो से। धिरावति = धमकी देती है।

१८४. गढि गढि = रच-रच कर।

१८५. बाते मिलवतिँ जोरि = गढकर झूठी बाते करती है। सब सारि = सबकी सब; सब सारी।

नंद नंदन देखि रीझे चितै रहे चित लाइ।
सूर प्रभु की प्रिया राधा भरति जल मुसकाइ ॥१८६॥

घरहि चली जमुना जल भरि कै।
सखिनि बीच नागरी बिराजति भई प्रीति उर हरि कैं।
मंद मंद गति चलत अधिक छबि अंचल रह्यौ फहरि कै।
मोहन कौ मोहिनी लगाई मगहि चले डगरि कै।
बनी की छबि कहत न आवै रही नितबनि ढरि कै।
सूर स्याम प्यारी कै बस भए रोम रोम रस भरि कै ॥१८७॥

गागरि नागरि जल भरि आवै :
सखियन बीच, भर्‍यौ घट सिर पर, तापर नैन चलावै।
डुलति ग्रीव लटकति नक बेसरि मंद मंद गति आवै।
भृकुटी धनुष कटाच्छ बान मनौ पुनि पुनि हरिहिँ लगावै।
जाकौ निरखि अनग अनगत ताहिँ अनग बढ़ावैं।
सूर स्याम प्यारी छबि निरखत आपुहि धन्य कहावै ॥१८८॥

पर्‍यौ तब तै ठग मूरि ठगौरी।
देख्यौ मैं जमुना तट बैठौ ढोटा जसुमति कौ री।
अति सावरौ भर्‍यो सो साचैं कीन्हे चंदन खौरी।
मनमथ कोटि कोटि गहि वारौं ओढ़े पीत पिछौरी।
दुलरी कंठ नैन रतनार मो मन चितै हरौ री।
बिकट भृकुटि की ओर कोर तै मनमथ बान धरौ री।
दमकत दसन कनक कुंडल मुख मुरली गावत गौरी।
स्रवन न सुनत देह गति भूली भई बिकल मति बौरी।

---

१८८ अनग अनगत = कामदेव भी निष्प्रभ हो जाता है।
१८९. ठग मूरि = ठग लेनेवाली (मुग्ध या वशीभूत करनेवाली) बूटी। भर्‍यौ सो साचैं = साँचे मे ढला हुआ-सा।

नहिं कल परत बिना दरसन तै नैननि लगी ठगौरी ।
सूर स्याम चित टरत न नैकहुँ निसिदिन रहत लगौ री ॥१८९॥

मेरौ हरि नागर सौं मन मान्यौ ।
मन मोह्यौ सुन्दर ब्रज नायक भली भई सब जान्यौ ।
बिसरी देह गेह सुधि बिसरी बिसरि गई कुल कान्यौ ।
सूर आस पूजै या मन की तब भावै भोजन पान्यौ ॥१९०॥

मेरे जिय ऐसी आनि बनी ।
बिनु गोपाल और नहि जानौ सुनि मोसौं सजनी ।
कहा काच संग्रह के कीन्हे हरि जु अमोल मनी ।
बिष सुमेरु कछु काज न आवै अमृत एक कनी ।
मन बच क्रम मोहिं और न भावै अब मेरे स्याम धनी ।
सूरदास स्वामी के कारन तजी जाति अपनी ॥१९१॥

अब दृढ करी धरी यह बानि ।
कहा कीजै सो नफा जेहिं होइ जिय की हानि ।
लोक लज्जा काच किरिचक स्याम कञ्चन खानि ।
कौन लीजै कौन तजिऐ सखि तुमहि कही जानि ।
मोहिं तौ नहिं और सूझत बिना मृदु मुसकानि ।
रग कापै होत न्यारौ हरद चूनौ सानि ।

---

१९० मन मान्यौ = मन वशीभूत हो गया । सब जान्यौ = सब लोग जान गये । कुल कान्यौ = कुल का संकोच भी । पूजै = पूरी हो ।

१९१. ऐसी आनि बनी = यह बात जम गई है । बिष .. कनी = एक कनी अमृत की सब कुछ है; विष का पहाड़ किस काम का ?

१९२ नफा = लाभ (मर्यादा आदि का) । जिय = जीवन, प्राण । काच किरिचक = काँच कीले (तुच्छता की सूचना ।)

इहै करिहौं और तजिहौ परी ऐसी बानि।
सूर प्रभु पतिव्रत राखै मेटि कै कुल कानि ॥१९२॥

गोवर्द्धन-पूजन

बाजति नंद अवास बधाई।
बैठे खेलत द्वार आपनैं सात बरस के कुँवर कन्हाई।
बैठे नद सहित वृषभानुहिं और गोप बैठे सब आई।
थापै देतिं घरनि के द्वारे गावतिं मगल नारि सुहाई।
पूजा करत इद्र की जानी आये स्याम तहां अतुराई।
बूझत बार बार हरि नदहिं कौन देव की करत पुजाई।
इद्र बडे कुल-देव हमारे उनतै सब यह होति बडाई।
सूर स्याम तुम्हरे हित कारन यह पूजा हम करत सदाई ॥१९३॥

गावत मगलचार महर घर ।
जसुमति भोजन करति चँडाई नेवज करि करि धरति स्याम डर।
देखे रहौ न छुवै कन्हैया कहा जानै वह देव काज पर ।
और नही कुल देव हमारे कै गोधन कै वै सुरपति बर।
करति बिनय कर जोरि जसोदा कान्हहिँ कृपा करहु करुनाकर।
और देव तुम सरि कोउ नाही सूर करौ सेवा चरननि नर॥१९४॥

मेरौ कह्यौ सत्य कै जानौ ।
जौ चाहौ ब्रज की कुसलाई तौ गोबरधन मानौ ।

---

१९३ अवास = आवास, गृह। थापैं देति = हाथो के निशान बनाती हैं। होति बडाई = समृद्धि होती है।

१९४ नेवज = नैवेद्य, प्रसाद। देव काज पर = देवकार्य को, अनुष्ठान के महत्त्व को।

दूध दहीं तुम कितनौ लहौ गोसुत बढै अनेक ।
कहा पूजि सुरपति कौ पावै छाडि देहु यह टेक ।
मुँहमागे फल जौ तुम पावहु तौ तुम मानहु मोहि ।
सूरदास प्रभु कहत ग्वाल सौ सत्य बचन कहि दयौहि ॥१९५॥

तात गोबद्धन पूजहु जाइ ।
मधु मेवा पकवान मिठाई ब्यजन बहुत बनाइ ।
इहि पर्वत तृन ललित मनोहर सदा चरैं सुख गाइ ।
कान्ह कहै सोइ कीजिऐ जैसे मघवा जाइ रिसाइ ।
भरि भरि सकट चले गिरि सनमुख अपनै अपनै चाइ ।
सूरदास प्रभु अपबस भोगी धरि स्वरूप गिरिराइ ॥१९६॥

ब्रज घर घर अति होत कोलाहल ।
ग्वाल फिरत उमगे जहँ तहँ सब अति आनद उमाहल ।
मिलत परसपर अकम दै दै सकटनि भोजन साजत ।
दधि लावनि मध माट धरत लै राम स्याम सँग राजत ।
मंदिर तैं लै धरत आंजर पर षटरस की जवनार ।
डालनि भरि अरु कलस नए भरि जोरत है परकार ।
सहस सकट मिष्टान्न अन्न बहु नद-महर घर ही कौ ।
सूर चले सब लै घर घर तै सग सुवन नँद जी कौ ॥१९७॥

सकट साजि सब ग्वाल चले गिरि गोबर्द्धन पूजा के काज ।
घर घर तैं मिष्टान्न चले लै भांति भाति बहु बाजन बाज ।
अति आनद भरे गुन गावत उमडे फिरत अहीर ।
पैडौ नहिं पावत तँह कोऊ ब्रज बासिन की भीर ।

---

१९५ टेक = हठ ।

१९६. मघवा = इद्र । चाइ = चाव । अपबस भोगी = स्वयं ही भोग ग्रहण करनेवाले ।

१९७. उमाहल = उमग से भरे हुए । डालनि = बडी डाली; डाला ।

१९८. पैंडौ = रास्ता ।

एक चले आवत ब्रज तन का एक ब्रज तै बन काज।
सूरदास तहँ स्याम सबनि कौ देखियत है सिरताज ॥१९८॥

चली घर घरनि तै ब्रजनारि।
मनौ इन्द्रबधूनि पंगति सोभा लागति भारि।
पहिरि सारी सुरँग पँचरँग षटदसहुँ शृंगारि।
इहै इच्छा सबनि कै मन स्याम रूप निहारि।
ललिता चन्द्रावली राधा सँग कारति सखारि।
चले पूजा करन गिरि की सूर सँग नर नारि ॥१९९॥

विप्र बुलाइ लिए नँदराइ।
प्रथमारम्भ जग्य कौ कीन्हौ उठ बेद धुनि गाइ।
गोबरधन गिर तिलक बदियौ मेटि इंद्र ठकुराइ।
अन्नकूट ऐसौ रचि राख्यौ गिरि की उपमा पाइ।
भाँति भाँति ब्यंजन परुसाए का पै बरन्यौ जाइ।
सूर स्याम सौ कहत ग्वाल गिरि जेंवहिं कहौ बुझाइ ॥२००॥

बिनती करत सकल अहीर।
कलस भरि भरि ग्वाल लै लै सिखर डारत छीर।
चल्यौ बहि चहु पास तै पय सुरसरी जनु ढारि।
बसन भूषन लै चढाए भीर अति नर नारि।
मूंदि लोचल भोग अरप्यौ प्रेम सौ रुचि भारि।
सबनि देखी प्रगट मूरति सहस भुजा पसारि।

---

१९८. सिरताज = प्रधान।

१९९. इन्द्रबधूनि = बीरबहूटी। षटदसहुँ शृंगारि = सोलहो शृंगार करके।

२००. बदियौ = निवेदन किया, अर्पण किया।

२०१ छीर = दूध। सुरसरी जनु ढारि = मानो गंगा ढल चली हो।

रुचि सहित गिरि सबनि आगे करनि लै लै खाइ।
नंद सुत महिमा अगोचर सूर क्यौ कहै गाइ ॥२०१॥

गिरिबर स्याम की अनुहारि।
करत भोजन अति अधिकई भुजा सहस पसारि।
नंद कौ कर गहे ठाढे इहै गिरि कौ रूप।
सखी ललिता राधिका सौ कहति देखि स्वरूप।
यहै कुंडल यहै माला यहै पीत पिछौरि।
सिखर सोभा स्याम की छबि, स्याम छबि गिरि जोरि।
नारि बदरौला रही बृषभान घर रखवारि।
तहाँ तै उहि भोग अरप्यौ लियौ भुजा पसारि।
राधिका छबि देखि भूली स्याम निरखहि ताहि।
सूर प्रभु बस भई प्यारी कोर लोचन चाहि ॥२०२॥

चले ब्रज घरनि कौ नर नारि।
इंद्र की पूजा मिटाई तिलक गिरि कौ सारि।
पुलक अँग न समात उर मै महर-महरि समाज।
अब बडे हम देव पाए गिरि गोबर्धन राज।
इनहिँ तै ब्रज चैन रहि है मागि भोजन खात।
यहै घैरा चलत ब्रजजन सबै मुख यह बात।
सबै सदननि आइ पहुँचे करत केलि बिलास।
सूर प्रभु यह करी लीला इंद्र रिस परकास ॥२०३॥

---

२०२ स्याम की अनुहारि = श्याम के ही रूप के है। सिखर .. जोरि = शिखर ने श्याम की और श्याम ने शिखर (पर्वत) की शोभा धारण कर ली है।

२०३ सारि = लगाकर। इनहि खात = ये ऐसे देवता है जो (प्रत्यक्ष) माँगकर भोजन करते है अत: इन्हे पाकर ब्रज सुखी होगा। घैरा = चर्चा। इंद्र परकास = इंद्र का क्रोध उभाडने के लिए।

इंद्र का क्रोध

प्रथमहिं देउँ गिरिहिं बहाइ।
बज्र-घातनि करौ चूरन देउँ धरनि मिलाइ।
मेरी इन महिमा न जानी प्रगट देउँ दिखाइ।
जल बरषि ब्रज धोइ डारौ लोग देउँ बहाइ।
खात खेलत रहे नीकें करी उपाधि बनाइ।
सूर सुरपति कहत पुनि पुनि परौं ब्रज पर धाइ॥ २०४॥

सुनत मघ बर्तक सजि सैन आए।
जलबर्त बरिबर्त पवनबर्त बज्रबर्त अग्निबर्तक जलद संग ल्याए।
घहरात तररात गररात हहरात पररात झहरात माथ नाए।
कौन ऐसौ काज बोले हम सुरराज प्रलय के साज हमकौ बुलाए।
बरष दिन संजोग देत मोकौ भोग छुद्रमति ब्रजलोग गर्ब कीन्हौ।
मोहिं गए बिसराइ पूज्यौ गिरिबर जाइ परौ ब्रज पर धाइ आयसु दीन्हौ।
कितक ब्रज के लोग रिस करत केहिं जोग गिरि लियौ जो भोग फल सु पैहैं।
सूर सुरपति सुनौ बयौ जैसो लुनौ प्रभु कहा गुनौ गिरि सहित बैहैं॥ २०५॥

मेघ दल प्रबल ब्रज लोग देखैं।
चकित जहँ तहँ भए निरखि बादर नए ग्वाल गोपाल डरि गगन पेखैं।
ऐसे बादर सजल करत अति महाबल चलत घहरात करि अधकाला।
चकित भए नंद सब महर चक्रित भए चकित नरनारि हरि करत ख्याला।

---

२०४ उपाधि बनाइ = जान-बूझकर आफत बुलाई। परौ ब्रज पर धाइ = ब्रज पर टूट पड़ूँगा।

२०५ मेघवर्तक = मेघ के अधिष्ठातृ देवता। प्रलय के साज हमकौ = हमको, जो प्रलय के साज हैं बुलाया। बयौ जैसो लुनौ = जैसा बोया है वैसा ही काटे।

२०६. ख्याला = खिलवाड़।

घटा घन घोर घहरात अररात दररात सररात ब्रज लोग डरपे।
तड़ित आघात तररात उतपात सुनि नारि नर सकुचि तन प्रान अरपैं।
कहा आहत होन न भई कबहू जौन कबहूँ आंगन भौन बिकल डोले।
मेटि पूजा इद्र नद सुत गोबिद सूर प्रभु आनद करै कलोले।। २०६।।

गए बिततात्र ब्रज नर नारि।
धरत सैतत धाम आसन नाहि सुरति सम्हारि।
पूजि आए गिरि गोबर्धन दनिं पुरुषन गारि।
आपनो कुलदेव सुरपति धरचौ ताहि बिसारि।
दियौ फल यह गिरि गोबर्धन लहु गोद पसारि।
मर कौन सम्हारि लैहै चढ्यौ इद्र प्रचारि।। २०७।।

ब्रज के लोग फिरत बितताने।
गैयनि लै बन ग्वाल गए ते धाए आवत ब्रजहिं पराने।
कोउ चितवत नभ तन चक्रित ह्वै कोउ गिरि परत धरनि अकुलाने।
कोउ लै ओट रहत बृच्छन की अंधधंध दिसि बिदिसि भलाने।
कोउ पहुँच जैसे तैसे गृह कोउ ढूंढत गृह नहि पहिचाने।
सूरदास गोबर्धन पजा कीन्हे कर फल लेहु बिहाने।।२०८।।

राखि लहु गोकुल के नायक।
गोीजन ग्वाल गाइ गोसुत सब विषम वद लागत जनु सायक

---

२०७ बितताइ = अस्तव्यस्त हो उठ, व्याकुल हो गय। सतत = सँभाल कर रखते है। गोद पसारि = प्रसन्नतापूर्वक (व्यग्य से)।

२०८. अंधधुंध = आँधी का अंधकार छा जाने से। बिहान = प्रात:काल; तुरत (व्यग्य से)।

२०९ सायक = शायक, बाण।

बरषत मुसलधार सैनापति महामघ मघवा के पायक।
तुम बिनु ऐसौ कौन नंद सुत यह दुख दुसह मिटावन लायक।
अघ-मरदन, बक-बदन-बिदारन, बकी-बिनासन सब सुख दायक।
सूरदास प्रभु ताकी यह गति जाकैं तुम से सदा सहायक॥२०९॥

स्याम लियौ गिरिराज उठाइ।
धरि धीरज हरि कहत सबनि सौं गिरि गोबर्धन किया सहाइ।
नंद गोप ग्वालनि के आगें देव कह्यौ यह प्रगट सुनाइ।
काहे कौं ब्याकुल भए डोलत रच्छा करी देवता आइ।
सत्य बचन गिरि देव कहत हैं कान्ह लेइ मोंहि कर उचकाइ।
सूरदास नारी नर ब्रज के कहत धन्य तुम कुवर कन्हाइ॥ २१०॥

गिरिबर धरौ सखा सब करते।
सब मिलि ग्वाल लकुटियनि टेकौ अपने अपन भुज के बर ते।
सात दिवस मूसल जलधारा बरषत हैं निसि दिन अंबर तैं।
अंतरिच्छ जल जात कहा ह्वै क्रोध सहित फिरि बरषत झरतैं।
गाइ गोप नंदादिक राख्यौ बृथा बूंद सब नैकु न थरतैं।
सूर गोपाल राखे गिरिवर तर गोकुल नरनारी ब्रजघर तैं॥२११॥

बरषि बरषि ब्रजतन घन हेरत।
मेघबर्त अपनी सैना कौं खीझत है फिरि टेरत।
कहा बरषि अब लौं तुम कीन्हौ राखत जलहि छपाइ।
मूसलधार बरषि जल पाटौ सात दिवस भए आइ।
रिस करि करि गरजत नभ बरषत चाहत ब्रजहि बहाइ।
सूर स्याम गिरि गोबरधन धर्यौ ब्रजजन कौ सुखदाइ॥ २१२॥

---

२०९. मघवा के पायक = इन्द्र के चाकर या सेवक।
२११. लकुटियनि = लाठियों से। बर = बल। झरतैं = झड़ी लगाकर।
 थरतैं = स्थिर होते; टिकते।

कहा होत जल महाप्रलय कौ।
राख्यौ सैंति सैंति जेहिं कारज बच्यौ नहिं कहुँ मनकौ।
भुव पर एक बूंद नहिं पहुँची निझरि गए सब मेह ।
बासर सात अखंडित धारा बरषत हारे देह।
बरन भयौ बिन नीर सबनि कौ नाम रह्यौ है बादर ।।
सूर चले फिरि अमरराज पै ब्रज तैं भए निरादर ।।२१३।।

इंद्र का शरण आना

सुरगन सहित इंद्र ब्रज आवत।
धवल बरन ऐरापति देख्यौ उतरि गगन तै धरनि धँसावत।
अमरा सिव रबि ससि चतुरानन हय गय बसह हंस मृग जावत ।
धर्मराज बनराज अनल दिव सारद नारद सिवसुत भावत ।
मेढा मढी मगर गुडरारो मोर आखु मनवाह गनावत ।
ब्रज के लोग देखि डरपे मन हरि आगै कहि कहि जु सुनावत ।
सात दिवस जल बरषि सिरान्यौ आवत चल्यौ ब्रजहिं अतुरावत।
घैरा करत जहा तहँ ठाढे ब्रजबासिन कौ नही बचावत ।
दूरहि तैं बाहन तै उतरयौ देवनि सहित चल्यौ सिर नावत ।
आइ परयौ चरननि तर आतुर सूरदास प्रभु सीस उठावत ।।२१४।

सुरगन करत अस्तुति मुखनि।
दरस तै अनुताप खोयौ मेटि अघ के दुखनि।

---

२१३. सैंति = एकत्र करके, सँजोकर। मनकौ = लेशमात्र। निझरि = खाली हो जाना। हारे देह = शरीर से थक गये।

२१४. ऐरापति = इंद्र का हाथी, ऐरावत। बसह = बैल। जावत = जितने। मेढा = बडा भेडा। गुडरारो = एक पक्षी (गरुड़)। आखु = चूहा।

२१५ अनुताप = ग्लानि; आत्मलज्जा।

अंग पुलकित रोम गद्‌गद कहत बानी मुखनि।
बाम भुज कर टेकि राख्यौ करज लघु के नखनि।
प्रेम कैं बस तुमहिं कीन्हौ ग्वाल बालक सखनि।
जोगि जन बन तपनि जापनि नहीं पावत मखनि।
धन्य नँद धनि मातु जसुमति चलत जाके रुखनि।
सूर प्रभु महिमा अगोचर जाति कापै लखनि ॥२१५॥

दानलीला

नँदनदन एक बुद्धि उपाइ।
जे जे सखा प्रकृति के जाने ते सब लए बुलाइ।
सुबल सुदामा स्रीदामा मिलि और महर सुत आए।
जो कछु मत्र हृदयँ हरि कीन्हौ ग्वालनि प्रगटि जनाए।
ब्रज जुवती नित प्रति दधि बेचन बनि बनि मथुरा जाति।
राधा चद्रावलि ललितादिक बहु तरुनी एक भाति।
कालिंदी तट कालि प्रात ही द्रुम चढ़ि रहौ लुकाइ।
गोरस लै जब ही सब आवैं मारग रोकहु जाइ।
भली बुद्धि यह रची कन्हाई सखनि कह्यौ सुख पाइ।
सूरदास प्रभु प्रीति हृदय की सब मन गए जनाइ॥ २१६॥

ब्रज जुवती मिलि करतिं बिचार।
चलौ आजु प्रातहिं दधि बेचन नित तुम करतिँ अबार।
तुरत चलौ अबही फिरि आवैं गोरस बेंचि सबारैं।
माखन दधि घृत साजतिँ मटुकी मथुरा जान बिचारैं।

---

२१५ करज = अँगुली। मखनि = यज्ञो से।
२१६ प्रकृति के = नैसर्गिक; हार्दिक। मंत्र = तजवीज। एक भांति = एक-सी। सब .. जनाइ = सब मन ही मन समझ गये; सबके मनों में भासित हो गया।

षटदस सहज सिंगार करति है अँग अँग निरखि सँवारतिँ।
सूरदास प्रभु प्रीति सबनि कैं नैंकु न हृदय बिसारतिँ ॥२१७॥

जुवती अंग सिँगार सँवारति।
बेनी गूथि माग मोतिन की सीसफूल सिर धारति।
गोरे भाल बिंदु सेंदुर पर टीका धर्‍यौ जराउ।
बदन चन्द्र पर रवि तारागन मानौ उदित सुभाउ।
सुभग स्रवन तरिवन मनि भूषित यह उपमा नहिँ पार।
मनहुँ काम रचि फंद बनाए कारन नंदकुमार।
नासा नथ मुक्ता की सोभा रह्यौ अधर तट जाइ।
दाडिम कन सुक लेत बन्यौ नहिँ कनक फंद रह्यौ आइ।
दमकत दसन अरुन अधरनि तर चिबुक डिठौना भ्राजत।
दुलरी अरु तिलरी बँद तापर सुभग हमेल विराजत।
कुच कँचुकी हार मोतिन अरु भुजनि बिजैठे सोहत।
डारनि चुरी करनि फुँदना जनु कंज पास अलि जोहत।
छुद्र घंटिका कटि लहँगा रँग तन तन सुख की सारी।
सूर ग्वालि दधि बेचन निकरी पग नूपुर धुनि भारी ॥ २१८॥

ग्वारिनि तब देखे नँदनंदन।
मोर मुकुट पीतांबर काछे खौर किए तन चंदन।
तब यह कह्यौ कहाँ अब जैहौ आगे कुँवर कन्हाई।
यह सुनि मन आनंद बढ़ायौ मुख कहैं बात डराई।
कोउ कोउ कहति चलौ री जाई कोउ कहैं फिरि जाइ।
कोउ कोउ कहति कहा करिहैं हरि इनकौं कहा पराइ।

२१८. सीसफूल = शिरोभूषणविशेष। कारन नंदकुमार = कृष्ण के लिए। डारनि = भुजा का निचला भाग। फुंदना = काली डोरी या तारों की बनी हुई गाँठ, जो शोभा के लिए बनाई जाती है।

२१९. पराइ = भागें (इनसे क्या भागें)।

कोऊ कहति कालि ही हमकौं लूटि लई नँदलाल।
सूर स्याम के ऐसे गुन हैं घरहिं फिरी ब्रजबाल ॥ २१९ ॥

ग्वालनि सैन दियौ तब स्याम।
कूदि कूदि सब परहु द्रुमनि ते जात चली घर बाम।
सैन जानि तब ग्वाल जहाँ तहँ द्रुम द्रुम डार हलाए।
बेन बिषान मख मुरली धुनि सब एक सब्द बजाए।
चकित भइ तरु तरु प्रति देखतिँ डारनि डारनि ग्वाल।
कूदि कूदि सब परे धरनि मैं घेरि लई ब्रजबाल।
नित प्रति जातिँ दूध दधि बेचन आज पकरि हम पाई।
सूर स्याम कौ दान देहु तब जैहौ नंद दोहाई ॥ २२० ॥

यह सुनि हँसी सकल ब्रज नारी।
आनि सुनहु री बात नई एक सिखए हैं महतारी।
दधि माखन खैबे कौ चाहत मांगि लेहु हम पास।
सूधे बात कहौ सुख पावै बांधन कहत अकास।
अब समुझी हम बात तुम्हारी पढे एक चटसार।
सुनहु सूर यह बात कहौ जनि जानतिँ नंदकुमार ॥२२१॥

बात कहति ग्वालिनि इतराति।
हम जानी अब बात तुम्हारी सूधें नहिँ बतराति।
इहै बडौ दुख गाव बास कौ चीन्हे कोउ न सकात।
हरि मागत हैं दान आपनौ कहतिँ मागि किन खात।

---

२२०. सैन = इशारा।
२२१. सिखए = सिखाये गये हैं। बाँधन कहत अकास = हैसियत के बाहर का काम करना चाहते हो। चटसार = पाठशाला।
२२२ चीन्हे.. सकात = जान-पहचान हो जाने पर कोई डरता नहीं, अदब नहीं करता।

हाट बाट सब हमहि उगाहत अपनौ दान जगात।
सूरदास कौ लेखौ दीजै कोउ न कहै पुनि बात ॥२२२॥

कौन कान्ह, को तुम, कहा मांगत ?
नीकें करि सबकौ हम जानतिँ बातैं कहत अनागत।
छाडि देह हमकौ जनि रोकहु बृथा बढ़ावत रारि।
जैहै बात दूरि लौ ऐसी परिहै बहुरि खँभारि।
आजुहि दान पहिरि ह्या आए कहा दिखावहु छाप।
सूर स्याम वैसेहि चलौ ज्यौ चलत तुम्हारौ बाप ॥२२३॥

कान्ह कहत दधि-दान न दैहौ।
लैहौं छीनि दूध दधि माखन देखत ही तुम रैहौ।
सब दिन कौ भरि लेहुँ आज ही तब छाडौ मैं तुमकौ।
उघटति हौ तुम मात पिता लौ नहिँ जानौ तुम हमकौ।
हम जानति है तुमकौ मोहन लै लै गोद खिलाए।
सूर स्याम अब भए जगाती वै दिन सब बिसराए ॥२२४॥

का पर दान पहिरि तुम आए।
चलहु जु मिलि उनही पै जैयै जिन तुम रोकन पथ पठाए।
सखा सग लीन्हे जु सेति कै फिरत रैनि दिन बन मे धाए।
नाहिंन राज कस कौ जान्यौ बाट जु रोकत फिरत पराए।
लीन्हे छीन बसन सबही के सबही लै कुजनि अरुझाये।
सूरदास प्रभु के गुन ऐसे दधि के माट भूमि ढरकाए ॥ २२५ ॥

---

२२२. दान जगात = कर या चुगी।

२२३. अनागत = जो फबती न हो; असम्भव। खँभारि = झझट। दान पहिरि = चुगी उगाहने का अधिकार लेकर, पट्टा बाँधकर। छाप = सरकारी मुहर या परवाना।

२२४ उघटति = उखाड़ती हो; लपेटती हो।

२२५ दान पहिरि = वह पट्टा जो सरकारी कर्मचारी पहनते है।

प्यारी पीताबर उर झटक्यौ।
हरि तोरी मोतिन की माला कछु गर कछु कर लटक्यौ।
ढीठौ करन स्याम तुम लागे जाइ गही कटि फेंट।
आपु स्याम रिस करि अकम भरि भई प्रेम की भेंट।
जुवतिनि घेरि लियौ हरि कौ तब भरि भरि धरि अँकवारि।
सखा परसपर देखत ठाढे हँसत देत किलकारि।
हाक दियौ करि नद दोहाई आइ गए सब ग्वाल।
सूर स्याम कौं जानति नाही ढीठ भई है बाल ॥२२६॥

हम भई ढीठ, भले तुम ग्वाल।
दीन्हौ ज्वाब दई कौ चैहौ देखौ री यह कहा जँजाल।
बन भीतर जुवतिन कौं रोकत हम खोटी तुम्हरे ये हाल।
बात कहन कौ यौ आवति है बडे सुधर्मा धर्महिपाल।
साखि सखा की ऐसी भरिहौ तब आवहु ते जीति भुवाल।
आए है चढि रिस करि हम पर सूर हमहिं जानत बेहाल॥२२७॥

जानी बात तुम्हारी सबकी।
लरिकाई के ख्याल तजौ अब गई बात वह तब की।
मारग रोकत रहे जमुन कौ तेहि धोखें हौ आए।
पावहुगे पुनि कियौ आपनौ जुवतिनि हाथ लगाए।
जौ सुनि है वह बात मात पितु तौ हमसौ कहा कैहै।
सूर स्याम मोतिनि लर तोरी कौन ज्वाब हम दैहै॥ २२८॥

---

२२६ प्यारी झटक्यौ = राधा ने कृष्ण की देह का पीताम्बर झटका।
ढीठौ = ढिठाई।

२२७. दई कौ चैहौ = बुरे दिन (दुर्दैव) देखोगे। साखि....भरिहौ = साथ देना। भुवाल = राजा, कंस। बेहाल = अबला; निःसहाय; नेपुरसाँ।

आपुन भई सबै अब भोरी।
तुम हरि कौ पीतांबर झटक्यौ उन तुम्हरी मोतिनि लर तोरी।
मागत दान ज्वाब नहिँ देती ऐसी तुम जोवन की जोरी।
डर नहिँ मानतिँ नँदनदन कौ करतिँ आनि झकझोरा झोरी।
एक तुम नारि गवारि भली हौ त्रिभुवन मैं इनकी सरि को री।
सूर सुनहु लैहैं छड़ाई सब अबहिँ फिरौगी दौरी दौरी॥ २२९॥

तुम देखत रैहौ हम जैहे।
गोरस बेंचि मधुपुरी तैं पुनि एही मारग ऐहैं।
ऐसैं ही बैठे सब रैहौ बोले ज्वाब न दैहे।
धरि लैहे जसुमति पै हरि कौ तब धौ कैसें कैहैं।
काहे कौ मोतिनि लर तोरी हम पीतांबर लैहे।
सूर स्याम इतरात इते पर घर बैठे तब रैहैं॥ २३०॥

मेरैं हठ क्यौ निबहन पैहौ।
अब तौ रोकि सबनि कौ राख्यौ कैसे करि तुम जैहौ।
दाव लेउँगौ भरि दिन दिन कौ लेखौ करि सब दैहौ।
सौंह करत हौ नदबबा की हौ कैहौ तब जैहौ।
आवति जाति रहत एही पथ मो सौ बैर बढैहो।
सुनहु सूर हम तैं हठ माडति कौन नफा करि लैहौ॥ २३१॥

कौन बात यह कहत कन्हाई।
समुझतिँ नही कहा तुम मागत डरपावत करि नद दुहाई।
डरपावहु तिनकौ जे डरपहिँ हम तुम तै घटि नाहिँ।
मारग छांडि देहु मनमोहन दधि बेचन हम जाहिँ।

---

२२९ भोरी = निर्दोष, भोली। लर = लडी।
२३१. निबहन = निकलकर जाना। हठ माडति = हठ ठानती हो; बैर बाँधती हो।

भली करी मोतिनि लर तोरी। जसुमति माँ हम लैहैं।
सूरदास प्रभु इहौ बनत नहिँ इतनौ धन कहँ पैहैं॥ २३२॥

दान देति की झगरौ करिहौ।
प्रथमहिँ यह जजाल मिटावहु ता पाछै तुम हमहिँ निदरिहौ।
कहत कहा निदरे से हौ तुम सहज कहतिँ हम बात।
आदि बुन्यादि सबै हम जानतिँ काहे कौं सतरात?
रिस करि करि मटुकी सिर धरि धरि डगरि चली सब ग्वारिनि।
सूर स्याम अंचल गहि झटकी जैहौ कहा बजारिनि॥२३३॥

मागत ऐसे दान कन्हाई।
अब समुझी हम बात तुम्हारी प्रगट भई कछु धौं तरुनाई।
इहिँ लालच अँकवारि भरत हौ हार तोरि चोली झटकाई।
अपनी ओर देखि धौ लीजै ता पाछे करिए बरिआई।
सखा लिए तुम घेरत पुनि पुनि बन भीतर सब नारि पराई।
सूर स्याम ऐसी न बूझियै इन बातनि मरजादा जाई॥ २३४॥

हम पर रिस करतिँ ब्रजनारि।
बात सूधै हम बतावत आपु उठतिँ पुकारि।
कबहुँ मरजादा घटावतिँ कबहुँ देहैं गारि।
प्रात तै झगरौ पसारौ दान देहु निवारि।

---

२३२. इहौ बनत पैहैं = यह कहना भी नहीं बनता क्योंकि यशोदा के पास इतना धन भी कहाँ है (जो मेरी मुक्तामाल का मूल्य चुका सके)।

२३३. जजाल मिटावहु = पावना साफ़ करो। निदरिहौ = अपमान करोगी। कहत . हौ तुम = तुम कहते क्या हो, अपमानित तो तुम हो ही। बुन्यादि = बुनियाद, उत्पत्ति। सतरात = अकडते हो। बजारिनि = बाजार करनेवाली (तुच्छता में)।

२३४. अपनी ओर = अपनी हस्ती की ओर। बरिआईं = जबरदस्ती।

बड़े घर की बहू बेटी करतिं बृथा झँवारि।
सूर अपनो अस पावैं जाहिं घर झखमारि ॥२३५॥

दान सुनत रिस होइ कन्हाई।
और कहौ सो सब सहि लैहे जो कछु भली बुराई।
महतारी तुम्हरी के वै गुन उरहन देत रिसाई।
तुम नीके ढँग सीखे बन मे रोकत नारि पराई।
आवन जान पाव नहि कोऊ तुम मग मे घटवाई।
सूर स्याम हमको बिरमावत खीझत बहिनी माई ॥ २३६ ॥

काहे कौं तुम झेर लगावति।
दान देहु घर जाहु बेँचि दधि तुमही कौं यह भावति।
प्रीति करौ मोसौ तुम काहैं न बनिज करति ब्रज गाउँ।
आवहु जाहु सबै इहिँ मारग लेत हमारौ नाउँ।
लेखौ करौ तुमहि अपने मन जो देहौ सो लैहौं।
सूर सुभाइ चलौगी जब तुम पुनि धौ मे कह कैहौ ॥ २३७ ॥

काहे कौ हम सौ हरि लागत।
बातहिं कछू खोल रस नाही की जानै कहा मांगत।
कहा सुभाउ परयौ अब ही तै इन बातनि कछु पावत।
निपट हमारे ख्याल परे हरि बन मे नितहिँ खिझावत।
पैंडौ देहु बहुत अब कीन्हौ सुनत हँसैगे लोग।
सूर हमहिँ मारग जनि रोकहु घर तैं लीजै ओग ॥ २३८ ॥

---

२३५. झँवारि = झाँव-झाँव । अस = हक्क । झखमारि = इच्छा या अनिच्छापूर्वक जैसे भी हो ।

२३६. दान = कर या उगहनी के नाम से । घटवाई = घाट का कर लेनेवाले । बिरमावत = अबेर कराते हो ।

२३७ झेर लगावति = विलब करती हो । बनिज = व्यापार ।

२३८. खोल रस = गुप्त रस । ओग = उगाहना, उधार चुकाना ।

अब लौं यहै करयो तुम लखौ।
मो कौ ऐसी बुद्धि बतावतिँ कर दरपन लै देखौ।
आपहि चतुर आपु ही सब कछु हमकौ करतिँ गँवार।
आगहै लेत फिरौ इनकै घर ठाढे ह्वै ह्वै द्वार।
घाट छांडि जैहौं तब लैहो ज्वाब नृपति कहु देहौं।
जा दिन तैं इहिँ मारग आवति ता दिन तै भरि लैहो।
इनकी बुद्धि दान हम पहिरौ काहे न घर घर जैहौं।
सूर स्याम तब कहत सखिनि सौ जान कौन बिधि पैहौ ॥२३९॥

भली भई नृप मान्यौ तुम हू।
लेखौ करैं जाइ कसहि पै चलै सग तुम हम हूं।
अब लौं हम जानी ही घर ही पहिरयौ है तुम दान।
कालि कह्यौ हो दान लेन कौ नदमहर की आन।
तौ तुम कस पठाए हो ह्या अब जानी यह बात !
सूर स्याम सुनि सुनि यह बानी भौंह मोरि मुसकात ॥२४०॥

कहा कहतिँ कछु जानि न पायौ।
कब कसहिँ धौं हम कर जोरयौ कब हम माथ नवायौ।
कबहू सौंह करत देख्यौ मोहिँ लेत कबहुँ मुख नाउँ।
निपटहिँ ग्वारि गवारि भई तुम बसत हमारैं गाउँ।
कहा कस कितने लायक कौ जाकौ मोहिँ दिखावति।
सुनहु सूर इहि नृप के हम हैं यह तुम्हरैं मन आवति ? ॥२४१॥

---

२३९. कर दरपन = हाथ मे दर्पण लेकर मुँह देखो (विनोद में)। आग-है = उधार के दाम।

२४०. जानी ही = समझती थी। आन = शपथ।

२४१ कबहू सौंह मोहिँ = मुझे कंस के नाम की शपथ करते या दुहाई देते देखा है। इहि..हम ह = हम कंस के दल के हैं।

यह कहि उठे नदकुमार।
कहा ठगि सी रही बाला परचौ कौन बिचार।
दान कौ कछु कियौ लेखौ रही जहँ-तहँ सोचि।
प्रगट करि हमकौ सुनावहु मेटि जिय दै दौचि।
बहुरि इहिँ मग जाहु आवहु राति सांझ सकार।
सूर ऐसौ कौन जो पुनि तुमहिँ रोकनिहार॥२४२॥

हमहि और सो रोकै कौन ?
रोकनिहारौ नद महर सुत कान्ह नाम जाकौ है तौन।
जाकैं बल है काम नृपति कौ ठगत फिरत जुवतिनि कौ जौन।
टोना डारि देत सिर ऊपर आपु रहत ठाढे ह्वै मौन।
सुनहु स्याम ऐसी न बूझिए बानि परी तुमकौ यह कौन।
सूरदास प्रभु कृपा करहु अब कैसेहु जाहिँ आपने भौन॥२४३॥

को जानै हरि चरित तुम्हारे।
जबहू दान नही तुम पायौ मन हरि लिए हमारे।
लेखौ करि लीजै मनमोहन दूध दह्यौ कछु खाहु।
सदमाखन तुम्हरेहि मुख लायक लीजै दान उगाहु।
तुम खैहौ माखन दधि हम सब देखि देखि सुख पावैं।
सूर स्याम तुम अब दधि दानी कहि कहि प्रगट सुनावैं॥२४४॥

माखन दधि हरि खात ग्वाल सँग।
पातनि के दोना सबकै कर लेत पतोखनि मुख मे तात रँग।
मटुकिनि तै लै लै परुसति है हरष भरी ब्रजनारि।
यह सुख तिहूं भुवन कहुँ नाही दधि जेँवत बनवारि।

---

२४२. लेखौ = हिसाब। दौचि = द्विविधा। साझ सकार = किसी भी समय।

२४५. दधि दानी = दधि का दान (कर) लनेवाले। पतोखनि = पत्तों के दोनो में।

गोपी धन्य कहतिं आपुन कौ धन्य दूध धनि माखन।
जाकौ कान्ह लेत मुख मलत करत सबै सभाषन।
जो हम साध करतिं अपने मन सो सुख पायौ नीके।
सूर स्याम पर तन मन वारतिं आनँद जी सब ही कें॥ २४५॥

राधा सौं माखन हरि मागत।
औरनि की मटुकी कौ खायौ तुम्हरौ कैसौ लागत।
लै आई बृषभानु सुता हँसि सद लौनी है मेरौ।
लै दीन्हौ अपने कर हरि मुख खात अल्प हँसि हेरौ।
सबहिनि तै मीठौ दधि है यह मधुरे कह्यौ कन्हाइ।
सूरदास प्रभु सुख उपजायौ ब्रजललना मन भाइ॥२४६॥

मेरे दधि कौ हरि स्वाद न पायौ।
जानत इन गुजरिन को सो है लयौ छडाइ मिलि ग्वालनि खायौ।
धौरी धेनु दुहाइ छानि पय मधुर आच में अवटि सिरायौ।
नई दोहनी पोंछि पखारी धरि निरधूम खिरनि पै तायौ।
ता में मिलि मिस्रित मिस्री करि दै कपूर पुट जावन नायौ।
सुभग ढकनिया ढापि बाधि पट जतन राखि छीकें समदायौ।
हौ तुम कारन लै आई गृह मारग मै न कहू दरसायौ।
सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि कियौ कान्ह ग्वालिनि मनभायौ॥२४७॥

नदकुमार कहा यह कीन्हौ।
बूझतिं तुमहिं कहौ धौं हमसौं दान लियौ की मन हरि लीन्हौ।

---

२४६. सद लौनी = ताजा मक्खन। मधुरें = धीरे से।
२४७. गुजरिनि = अहीरिनि (निदा या तुच्छता के अर्थ में)। मधुर आच = हलकी आँच। निरधूम = धुएँ से रहित। खिरनि = अँगीठी। समदायौ = रक्खा। मारग . .दरसायौ = रास्ते म किसी की नजर नही पडने दी।

कछू दुराव नही हम राख्यो निकट तुम्हारें आई।
एते पर तुम ही अब जानौ करनी भली बुराई।
जो जासौं अंतर नहिँ राखै सो क्यौ अतर राखै।
सूर स्याम तुम अंतरजामी बेद उपनिषद भाषै॥ २४८॥

स्याम सुनहु एक बात हमारी।
ढीठौ बहुत कियौ हम तुम सौ बकसौ चूक हमारी।
मख सौं कही कटुक सब बानी हृदय हमारे नाहिँ।
हँसि हँसि कहति खिझावतिँ तुम कौ अति आनँद मन माहिँ।
दधि माखन कौ दान और जो जानौ सबै तुम्हारौ।
सूर स्याम तुमकौं सब दीन्हौ जीवन प्रान हमारौ॥ २४९॥

राधा जी का अनुराग

लोक सकुच कुल कानि तजी।
जैसे नदी सिधु कौ धावै तैसें स्याम भजी।
मात पिता बहु त्रास दिखायौ नेकु न डरी लजी।
हारि मानि बैठे नहिँ लागति बहुतै बुद्धि सजी।
मानति नही लोक मरजादा हरि के रंग मजी।
सूर स्याम कौं मिली चून हरदी ज्यौं रग रजी॥२५०॥

नेकु नही घर मे मन लागत।
पिता मातु गुरुजन परबोधत नीके बचन बान सम लागत।
तिनकौं धिग धिग कहति मनहिँ मन इनकौ बनै भलें ही त्यागत।
स्याम बिमुख नर नारि बृथा सब कैसे मन इन सौं अनुरागत।

---

२४९. बकसौ = क्षमा करो।
२५० नहि. सजी = बहुत-सी तदबीरे उन्होने की, पर लगी (एक भी) नही। मजी = निखर गई हैं। रजी = रँगी हुई हो।
२५१ परबोधत = चेतावनी (शिक्षा) देते है।

इनकौ बदन प्रात दरसै जनि बार बार बिधि सौ यह मागत।
यह तन सूर स्याम कौ अरप्यौ नेकु टरै नहिँ सोवत जागत ॥२५१॥

कोउ माइ लैहै री गोपालहिँ ।
दधि कौ नाम स्याम सुदर रस बिसरि गयौ ब्रजबालहिँ।
मटुकी सीस फिरति ब्रज बीथिनि बोलत बचन रसालहिँ।
उफनत तक्र चहू दिसि चितवति चित लाग्यौ नँदलालहिँ।
हँसति रिसाति बोलावति बरजति देखहु उलटी चालहिँ।
सूर स्याम बिन और न भावै या बिरहिनि बेहालहिँ ॥२५२॥

कछु कैहै की मौनहि रैहै।
कहा कहति हौ तो सौ कब की ताकौ ज्वाब कछू मोहि दैहै।
सुनिहैं मात पिता लोगनि मुख यह लीला उन सबनि जनैहै ।
प्रातहि तै आई दधि बेचन घरहिँ आजु जैहै कि न जैहै।
मेरौ कह्यौ मानिहै नाही ऐसैहि भ्रमि भ्रमि द्यौस बितैहै।
मुख तौ खोलि सुनौ तेरी बानी भली बुरी कैसी घर कैहै।
गुप्त प्रीति काहे न करी हरि सौ प्रगट किए कछु नफा बढैहै।
सूर स्याम सौ प्रीति निरतर लाज किऐँ अतर कछु ह्वै है ?२५३॥

कहा करौं मन हाथ नही ।
तू मो सौं यह कहति भली री अपनौ चित मोहि देति नही !
नैन रूप अटके नहिँ आवत स्रवन रहे सुनि बात तही।
इद्री धाइ मिली सब उनकौ तनु मै जीव रह्यौ सँग ही।
मेरे हाथ नही ये कोऊ घट लीन्हे इक रही मही।
सूर स्याम सँग तै कहुँ टरत न आनि देहि जौ मोहिँ तुही ॥२५४॥

---

२५२ तक्र = मट्ठा ।
२५३ कछु नफा बढैहै = क्या कुछ लाभ उठावेगी ? लाज ... ह्वै है = यदि लज्जा करेगी तो प्रीति मे क्या कुछ अतर पड जायगा ?
२५४. चित = हृदय।

अब तौ प्रगट भई जग जानी।
वा मोहन सौ प्रीति निरतर क्यौं अब रहै छपानी।
कहा करौ सुदर मूरति इन नैननि माझ समानी।
निकसति नही बहुत पचि हारी रोम रोम अरुझानी।
अब कैसैं निरुवारि जाति है मिली दूध ज्यौ पानी।
सूरदास प्रभु अतरजामी उर अतर की मानी ॥२५५॥

मैं अपनौ मन हरि सौ जोरचौ। हरि सौ जोरि सबनि सौ तोरचौ।
नाच कछचौ अब घूघट छोरचौ। लोक लाज सब फटकि पछोरचौ।
आगें पाछैं नीकें हेरचौ। माझ बाट मटुकी सिर फोरचौ।
कहि कहि कासौ करति निहोरचौ। कहा भयौ कोऊ मुख मोरचौ।
सूरदास प्रभु सौं चित जोरचौ। लोक बेद तिनुका सौ तोरचौ ॥२५६॥

कबकी महचौ लिऐं सिर डौले।
झूठे ही इत उत फिरि आवै इहा आनि फिरि बोलै।
मुह सौ भरी मथनिया तेरी तोहिं रटत भइ साझ।
जानति हौ गोरस कौ लैबौ याही बाखरि माझ।
इत धौ आइ बात सुनै मेरी कहे बिलग जनि मानै।
तेरे घर मै तुही सयानी और बेचि नहिं जानै।
भ्रमतहि भ्रमतहि भ्रम गइ ग्वालिन बिकल भई बेहाल।
सूरदास प्रभु अतरजामी आइ मिले गोपाल ॥२५७॥

---

२५५ अरुझानी = उलझ गई है। निरुवारि = निकालना।

२५६ नाचकछचौ = खुलकर नाचने का काछ कछा (बाना बनाया) है; घूघट छोरचौ = घूंघट उघार दिया है (लज्जा छोड़ दी है)। फटकि पछोरचौ = फटक कर साफ कर दिया है। मुख मोरचौ = किसी के मुँह मोडने से (प्रतिकूल होने से) क्या हुआ? तिनुका = तृण।

२५७ मुह सौं भरी = लबालब भरी हुई। जानति माझ = जानती हो कि तुम्हारे गोरस की खरीद इसी घर मे होगी (जिसमे कृष्ण रहते हैं)। बिलग = बुरा।

तुम सौ कहा कहौ सुन्दर घन।
या ब्रज मे उपहास चलत है सुनि सुनि स्रवन रहति मन ही मन।
जा दिन सबनि बछरु नोई कर मो दुहि दई धेनु बंसीबन।
तुम गही बांह सुभाइ आपनें हौं चितई हँसि नेंकु बदन तन।
ता दिन तैं घर मारग जित तित करत चबाउ सबै गोपीजन।
सूर स्याम सौं साच पारि हौ यह पतिबरत सुनहु नँदनदन ॥२५८॥

ब्रज बसि काके बोल सहौ।
तुम बिन स्याम और नहिँ जानौं सकुचनि तुमहि कहौ।
कुल की कानि कहां लौ करिहौं तुम को कहा लहौ।
धिग माता धिग पिता बिमुख तव भावै तहाँ बहौं।
कोऊ करै कहै कछु कोऊ हरष न सोक गहौ।
सूर स्याम तुमकौं बिन देखे तन मन जीव दहौ ॥२५९॥

देह धरे कौ यह फल प्यारी।
लोक लाज कुल कानि मानिए डरिए बंधु पिता महतारी।
श्रीमुख कह्यो जाहु घर सुन्दरि बडे महर बृषभानु दुलारी।
तुम अवसेर करत सब ह्वैहे जाहु बेगि दैहे पुनि गारी।
हमहु जाहिँ ब्रज तुमहु जाहु अब गेह नेह क्यों दीजै डारी।
सूरदास प्रभु कहत प्रिया सौं नेंकु नही मोतें तुम न्यारी ॥२६०॥

स्याम कौन कारे की गोरे!
कहां रहत काके वे छोटा बृद्ध तरुन की वै हैं भोरे।

---

२५८. सांच पारिहौ = सत्य-सत्य पालन करूँगी।
२५९. बोल = व्यंग्य बातें।
२६०. देह धरे को = शरीर धारण करने का; व्यावहारिक। तुम अवसेर = तुम्हारी चिन्ता।
२६१. भोरे = बच्चे।

इहँई रहत कि और गाव कहुँ मे देखे नाहिँन कहुँ उनकौं।
कहौ नही समुझाइ बात यह मोहिँ लगावति हौ तुम जिनकौ।
कहा रहौ मै कहँ के वै धौ तुम मिलवति हौ काहे ऐसी।
सुनहु सूर मो सी भोरी कौ जोरि जोरि लावति हौ कैसी।।२६१।।

चतुर सखी मन जानि लई।
मो मैती दुराव यह कीन्हौ याके जिय कछु त्रास भई
तब यह कह्यौ हँसति री तोसौ जनि मन मैं कछु आनै।
मानी बात कहा वै कहँ तू हमहू उनहिँ न जानै।
अबहिं तनक तू भई सयानी हम आगे की बारी।
सूर स्याम ब्रज मै नहिँ देखे हँसति कह्यौ घर जा री।।२६२

अब राधा तू भई सयानी।
मेरी सीख मानि हिरदे धरि जहँ तहँ डोलति बुद्धि अयानी।
भई लाज की सीमा तन मे सुनि यह बात कुँवरि मुसकानी।
हँसति कहा मै कहति भली तोहिँ सुनति नही लोगनि की बानी
आजहि तै कहुँ जान न दैहौ मा तेरी कछु अकथ कहानी
सूर स्याम कै संग न जैहौं जा कारन तू मोहिँ सुगानी।।२६३।

जुदी जुरि राधा ढिग आइ।
लखि लीन्ही तब चतुर नागरी ये मो पर सब हैं रिसहाई।
आदर नही कियौ काहू कौ मन मैं एक बुद्धि उपजाई।
मौन गह्यौ नहिं बोलति तिनसौं बैठि रही करि कै चतुराई।
आपुहि बैठि गई ढिग सिगरी जब जानी यह तौ चतुराई।
सूरदास दै सखी सयानी और कहू की बात चलाई।।२६४।

---

२६१. मोहि लगावति = जिनसे मेरा संबध बताती हो। मिलवति = बातें मिलाना या रचना।

२६३ लाज की सीमा = यौवन के चिह्न। सुगानी = क्रोध कर रही है।

२६४ रिसहाई = चिढी हुई।

राधिका मौन व्रत किन सधायौ ।
धन्य ऐसौ गुरु कान कैं लगत हीं मंत्र दै आजु ही व्रत लखायौ।
काल्हि कछु और तू प्रातहिं कछु और ही अबहिं कछु और ह्वै गई प्यारी।
सुनत यह बात हम दौरि आईं सबै तोहि देखत भईं चकित भारी।
अब कहौ बात या मौन कौ फल कहा सुनि जु लीजै कछु हमहु जानैं।
एक ही संग भई सबै जोबन नई अब होहु गुरु हम जु तुमहिं मानैं।
देहि उपदेस हमहू धरैं मौन सब मंत्र जब लियो तब हम न बोलैं।
सूर प्रभु की नारि राधिका नागरी नरचि लीन्ही मोहिं करनि ठोली ॥२६५॥

कैसे हैं नँद सुवन कन्हाई।
देखे नहीं नयन भरि कबहू ब्रज मैं रहत सदाई।
सकुचति हौ इक बात कहत तोहिं मो नहिं जानि सुनाई।
कैसेहु मोहिं दिखावहु उनकौ यह मेरे मन आई।
अति ही सुंदर कहियत हैं वे मोकौ देहि बताई।
सूरदास राधा की बानी सुनत सखी भरमाई ॥२६६॥

नागरी यहै करति चबाउ।
देखो धौं चतुरई वाकी हमसौं कियौ दुराउ।
लरिकई तैं करति ये ढँग तबहिं रही मनभाउ।
अब करति चतुराइ जानी स्याम पढ़ये दाउ।
कहाँ लौ करिहै अचगरी सबै ये उपजाउ।
आजु बाची मौन धरि जो सदा हौन बचाउ।

---

२६५ कान कैं लगत = मंत्र कान में सुनते ही। सुनि जु लीजै = यदि हम सुन लें। बोली = बुलाया। नरचि लीन्ही = गाड़ गई। ठोली = (व्यंग्यात्मक) ठठोली।

२६६. भरमाई = भ्रम में पड़ गई (कि अब क्या उत्तर दें ?)

२६७. मनभाउ = सीधी सादी। दाउ = चाल। उपजाउ = छूटी, गढ़ी हुई बात।

दिवस चारिक भोर पारौ रहौ एक सुभाउ।
सूर कालिहिं प्रगट ह्वैहै करन दै अपडाउ॥२६७॥

कहा कहति तू बात अयानी।
तुम यह कहति सबै वह जानति हम सब तै वह बड़ी सयानी।
सात बरष तें ये ढग सीखे तुम नौ यह आजुहि है जानी।
वाके छंद भेद को जानै मीन कबहिं धौ पीवत पानी।
हरि के चरित सबै उहिं सीखे दोऊ है वे बारह बानी।
काल्हि गई वाके घर सब मिलि कैसी बुद्धि मौन की ठानी।
कैसी कही नैकु नहिं बोली फिरी आइ तब हमहिं खिसानी।
सूर स्याम सगति की महिमा काहू कौ नैकहुँ न पत्यानी॥२६८॥

यमुना-स्नान

पुनि कहियो अब न्हान चलौगी।
तब अपनौ मन भायौ कीजौ जब मोकौ हरि सग मिलौगी।
यहे बात मन मै गहि राखी मै जानति कबहूँ न बिसरौगी।
इती बार मोकौ भइ आए न्हान चलनि की बहुरि करौगी।
गहि गहि बाहु सबनि कै री ठाढ़ी कैसेहु घर तै निसरौगी।
सूर राधिका कहति सखिनि सौ बहुरि आइ घर काज करौगी॥२६९॥

राधिका सग मिलि गोपनारी।
चली हिलि मिलि सबै रहसि बिहँसत तरुनि परसपर कौतूहल करत भारी।

२६७ भोर पारौ = चुपचाप रहकर भुला दो। एक सुभाउ = सरल भाव से (ताकि हमारी चाल प्रकट न हो)। अपडाउ = दुर्भाव; परायापन।
२६८ छंद = चालबाजी। भेद = रहस्य। मीन पानी = मछली कब पानी पीती है? यह कौन जान सकता है। बारह बानी = पक्के, पूरे (होशियार), कच्चापन नहीं है।
२७० रहसि बिहँसत = हास-विलास करती हुई।

मध्य ब्रजनागरी रूप रस आगरी घोष उजियागरी स्याम प्यारी।
जुरी ब्रज सुंदरी दसन छबि कुंदरी काम तन दुंदरी करन हारी।
अंग अंग सुभग अति चलति गजगति सबै कृष्न सौं एकमति जमुन जाहीं।
कोउ निकसि जाति कोउ ठठकि ठाढ़ी रहति कोउ कहति मग मिलि
चलहु नाहीं।
जुवति आनँद भरी भई जुरि कै खरी तनहिं छरहरी उठि बैस थोरी।
सूर प्रभु सुनि स्रवन तहाँ कीन्हौं गवन तरुनि मन रवन सब ब्रज
किसोरी॥२७०॥

गई ब्रज नारि जमुना तीर।
देखि लहरि-तरंग हरषीं रहत नहिं मन धीर।
संग राजति कुँवरि राधा भई सोभा भीर।
स्नान कौं वै भई आतुर सुभग जल गंभीर।
कोउ गई जल पैठि तरुनी और ठाढ़ी तीर।
तिनहिं लई बुलाइ राधा करति सुख तन सीर।
एक एकहिं धरति भुज भरि एक छिरकति नीर।
सूर राधा हँसति ठाढ़ी बनी छबि तन चीर॥२७१॥

राधा जल बिहरति सखियनि संग।
ग्रीव प्रजंत नीर मैं ठाढ़ी छिरकति जल अपनैं अपनैं रंग।
मुख पर नीर परसपर डारतिं सोभा अतिहिं अनूप बढ़ी तब।
मनौ चंद्रगन सुधा गडूषनि डारत हैं आनंद भरे सब।

---

२७० काम तन दुंदरी = कामदेव के शरीर में हलचल मचानेवाली। संग नाहीं = साथ-साथ क्यों नहीं चलती! उठि बैस = उठती हुई उम्र की।

२७१ और = अन्य (स्त्रियाँ)।

२७२ रंग = मौज में। गडूषनि = १ अंजली या चुल्लू, २ कुल्ला।

आई निकसि जानु कटि लौ सब अँजुरिनि तें जल डारनिं।
मानो सूर कनकबल्ली जरि अमृत पवन मिस झारनिं।।२७२।।

नटवर भेष काछे स्याम
पद कमल नख इंदु सोभा ध्यान पूरन काम।
जानु जंघ सुघटनि करभा नाहिँ रंभा तूल।
पीत पट काछनी मानहु जलज केसर झूल।
कनक छुद्रावली पंगति नाभि कटि के भीर।
मनो हंस रसाल पंगति रहे है ह्रद तीर।
झलक रोमावली सोभा ग्रीव मोतिनि हार।
मनौ गंगा बीच जमुना चली मिलि त्रैधार।
बाहु दंड बिसाल तट दोउ अंग चंदन रैनु।
तीर तरु बनमाल की छबि ब्रजजुवति सुख दैनु।
चिबुक पर अधरनि दसन दुति बिम्ब बीज लजाइ।
नासिका सुक नयन खंजन कहत कबि सरमाइ।
स्रवन कुंडल कोटि रबि छबि भृकुटि काम कोदंड।
सूर प्रभु है नीप कैं तर सीस धरे सिखंड।। २७३।।

राधे निरखि भूली अंग।
नंदनंदन रूप पर गति मति भई तनु पंग।

---

२७२. मानो ... झारनिं = सूरदास कहते हैं मानो स्वर्ण की लतायें (गोपियाँ) एकत्र होकर बहती हवा में अमृत को झारकर साफ कर रही हैं। हवा मे अन्न ओसाने की क्रिया प्रचलित है।

२७३ पूरन काम = मन कामना पूरी करनेवाली है। जानु = जंघे के नीचे का भाग, जो पेंडुरी के ऊपर होता है। सुघटनि = दृढ़ बनावट में। करभा = सिंह का बच्चा। रंभा = केला। जलज केसर झूल = कमल के केसर का बना वस्त्र। भीर = निकट (भिड़े हुए)। रसाल = मनोहर, सुन्दर। ह्रद = जलाशय, कुंड। कोदंड = धनुष। नीप = कदंब। सिखंड = मयूरपिच्छ।

इत सकुच अति सखिनि कौ उत होति अपनी हानि।
ध्यान करि अनुमान कीन्हौ अबहि लैहैं जानि।
चतुर सखियनि परखि लीन्ही समुझि भई गँवारि।
सबै मिलि इत न्हान लागी नाहि दियौ बिसारि।
नागरी मुख स्याम निरखति कबहुँ सखियनि हेरि।
सूर राधा लखति नाही इन दई अवडेरि॥ २७४॥

चितवनि रोके हू न रही।
स्याम सुंदर सिंधु सनमुख सरित उमँगि बही।
प्रेम सलिल प्रबाह भँवरनि मिलि न थाह लही।
लोभ लहरि कटाच्छ घूँघट पट करार ढही।
थके पल पथि नाव धीरज परत नहिंन गही।
मिली सूर सुभाव स्यामहि फेरिहू न चही॥ २७५॥

चितै रही राधा हरि को मुख।
भृकुटी बिकट बिसाल नयन जुग देखत मनहिं भयौ रतिपति दुख।
उनहि स्याम इकटक प्यारी छबि अंग अंग अवलोकत।
रीझि रहे उत हरि इत राधा अरस परस दोउ नोकत।
सखिनि कह्यौ बृषभानु सुता सौ देखे कुँवर कन्हाई।
सूर स्याम एई हैं ब्रज मैं जिनकी होति बडाई॥ २७६॥

---

२७४. समुझि = जान-बूझकर। अवडेरि = उपेक्षा करना, अन्यमनस्क होना।

२७५. लोभ ढही = लोभरूपी लहर है। नायिका (प्रियदर्शन के लोभ की लहर के वश होकर) कटाक्ष करती है, घूँघट का पट उघर पडता है, वही मानो नदी के करारो का ढहना है। पल पथि = पलरूपी यात्री। फेरिहू न चही = उलटकर देखा भी नहीं (गृह कुटुम्ब आदि को)।

२७६. दोउ नोकत = दोनो ओर से।

कहि राधा हरि कैसे हैं?
तेरैं मन भाए की नाहीं की सुन्दर की नैसे हैं।
की पुनि हमहिं दुराव करौगी की कैहौ वे जैसे हैं।
की हम तुम सौ कहति रही ज्यौं साँच कहौ की तैसे हैं।
नटवर भेष काछनी काछे अंगनि रतिपति सै से हैं॥ २७७॥

राधा हरि के गर्व गहीली।
मंद मंद गति मत्त मतंग ज्यौं अंग अंग सुख पुंज भरीली।
पग द्वै चलति ठठकि रहै ठाढ़ी मौन धरे हरि कैं रस गीली।
धरनी नख चरननि कुरवारनि सौतिनि भाग सुहाग डहीली।
नैकु नहीं पिय तैं कहुँ बिछुरति तातैं नाहिंन काम दहीली।
सूर सखी बूझैं यह कैसी आजु भई पत्र भेंट रहीली॥ २७८॥

कहा कहति तू बात अलेखे।
सोभा कहति स्याम तन देखे तुम नीके करि देखे।
कैसो बरन भेष है कैसो कैसे अंग त्रिभंग।
मा आगैं वह भेद कहौ धौं कैसो है तनु रंग।
मैं देखे की नाहीं देखे तुम तौ बार हजार।
सूर स्याम है अँखियनि देखति जाकौ वार न पार॥ २७९॥

हम देखे इहिं भाँति कन्हाइ।
सीस सिखंड अलक बिथुरे मुख स्रवननि कुंडल चारु सुहाइ।

---

२७७. नैसे = कुरूप, नेष्ट। सै से = सौ के समान।
२७८. भरीली = भरी हुई। कुरवारति = करोना, खरोचना। डहीली = डहडही, प्रफुल्लित। दहीली = दाहवाली (काम का दाह इसमें नहीं है)।
२७९ अलेखे = बिना समझे-बूझे। सूर … वार न पार = जिनका ओर-छोर नहीं है, उन्हें दो आँखों से कैसे देखती हो (व्यंग्य और साथ ही वाक्-चातुर्य)।

कुटिल भृकुटि लोचन अनियारे सुभग नासिका राजति।
अरुन अधर दसनावलि की दुति दाडिम कन तन लाजति।
ग्रीव हार मुक्ता बनमाला बाहु दंड गजसुंड ।
रोमावली सुभग बग पंगति जाति नाभि ह्रद कुंड।
कटि पट पीत मेखला कंचन सुभग जंघ जुग जान।
चरन कमल नख चंद्र नहीं सम ऐसे सूर सुजान।। २८० ।।

मोहन बदन बिलोकत अँखियनि उपजत है अनुराग ।
तरनि ताप तलफत चकोर गति पिवत पियूष पराग।
लोचन नलिन नये राजत रति पूरन मधुकर भाग।
मानहुँ अलि आनंद मिले मकरंद पिवत रितु फाग।
भँवरि भाग भृकुटी पर कुंकुम चंदनबिंदु बिभाग।
चातक सोम सक्रधनु घन म निरखत मन बैराग।
कुंचित केस मयूरचंद्रिका मंडल सुमन सुपाग।
मानहुँ मदन धनुष सर लीन्हे बरषत हैं बन बाग।
अधर बिंब बिहँसानि मनोहर मोहन मुरली राग।
मानहुँ सुधा पयोधि घेरि घन ब्रज पर बरषन लाग।

---

२८० अनियारे = नोकीले ।

२८१ तरनि . . .गति = सूर्य के ताप से तड़पते हुए चकोर की भाँति। मधुकर भाग = भ्रमर के लिए सौभाग्यस्वरूप। रितु फाग = बसंत ऋतु। भँवरि . . . बैराग = भौंहों के बीच भौंरी है (भंवर पड़ी हुई बालों की रेखा जो दोनो भौंहो के बीच मे हुआ करती है—(सुन्दरता की सूचक) उस पर कुंकुम और चन्दन के टीके लगे हैं। (पृथक् पृथक् रंगो के) । मानो चातक पक्षी बादलों मे चन्द्रमा और इंद्रधनुष को देखकर विरक्त (उदासीन) हो रहा हो (जल की आशा नहीं रही) ।

कुंडल मकर कपोलनि झलकत स्रम सीकर के दाग।
मानहुँ मीन मकर मिलि क्रीडत सोभित मदन तडाग।
नासा तिलक प्रसून पदवि पर चिबुक चारु चित खाग।
दाड़िम दसन मंद गति मुसकनि मोहत सुर नर नाग।
श्री गोपाल रस रूप भरी है सूर सनेह सुहाग।
ऐसी सोभा सिंधु बिलोकत इन अँखियन के भाग।।२८१।।

तुम देखे मैं नहीं पत्यानी।
मैं जानति मेरी गति सबही यहै साच अपनै मन आनी।
जो तुम अंग अंग अवलोक्यौ धन्य धन्य अस्तुति मुख गानी।
मैं तौ एक अंग अवलोकति दोऊ नैन भये भरि पानी।
कुंडल झलक कपोलनि आभा इतनैहि माझ बिकानी।
एकटक रही नैन दोउ रूधे सूर स्याम न पिछानी।। २८२ ।।

ह्वै लोचन तुम्हरे ह्वै मेरे।
तुम प्रति अंग बिलोकन कीन्ही मैं भइ मगन एक अँग हेरे।
अपनौ अपनौ भाग सखी री तुम तनमय मैं कहू न नेरे।
जो बुनिए सोई पुनि लुनिए और नहीं त्रिभुवन भटभेरे।
स्याम रूप अवगाहि सिन्धु तै पार होत चढि डोगिनि केरे।
सूरदास तैसें ये लोचन कृपा जहाज बिना को प्रेरै। २८३ ।।

अचानक आइ गए तहँ स्याम।
कृष्न कथा सब कहति परसपर राधा संग मिली ब्रजबाम।
मुरली अधर धरे नटवर बपु कटि कछनी पर वारौं काम।
सुभग मोर चंद्रिका सीस पर आइ गए पूरन सुख धाम।

चितखाग = चित्त में गड़ जाती है।

२८३. त्रिभुवन भटभेरे = दुनिया का प्रपंच। स्याम केरे = श्याम के रूप-समुद्र मे प्रवेश करके डोगियो (छोटी-छोटी नावों) के सहारे कौन पार हुआ है? (कोई नहीं)। प्रेरै = पार करे, प्रेरित करे।

तनु तमाल तरु तरुन कन्हाई दूरि करत जुवतिनि तन ताम।
सूर स्याम बंसी धुनि पूरत श्रीराधा राधा लै नाम।। २८४।।

थकित भई राधा ब्रजनारि।
जो मन ध्यान करति अवलोकति ते अंतरजामी बनवारि।
रतन जटित पग सुभग पांवरी नूपुर धुनि कल परम रसाल।
मानहुँ चरनकमल दल लोभी निकटहिं बैठे बाल मराल।
जुगल जंघ मरकत मनि सोभा विपरित भांति सवाँरे।
कटि काछनी कनक छुद्रावलि पहिरे नंददुलारे।
हृदय बिसाल माल मोतिनि बिच कौस्तुभ मनि अति भ्राजत।
मानहुँ नभ निर्मल तारागन ता मधि चन्द्र बिराजत।
दुहुँ कर मुरलि अधर परसाए मोहन राग बजावत।
चमकत दसन मटकि नासापुट लटकि नयन मुख गावत।
कुंडल झलक कपोलनि मानहुँ मीन सुधा सर क्रीडत।
भृकुटी धनुष नैन खंजन मनौ उडत नहीं मन ब्रीडत।
देखि रूप ब्रजनारि थकित भईं क्रीट मुकुट सिर सोहत।
ऐसे सूर स्याम सोभानिधि गोपीजन मन मोहत।। २८५।।

देखि री नवल नंदकिसोर।
लकुट सौं लपटाइ ठाढ़े जुवति जन मन चोर।
चारु लोचन हँसि बिलोकनि देखि कै चित भोर।
मोहिनी मोहन लगावत लटकि मुकुट झकोर।

---

२८४. तन ताम = शरीर का तमोगुण।
२८५. पांवरी = पदत्राण। विपरित भांति = नीचे से ऊपर की ओर मुराहीदार होते गये हैं। क्रीट = किरीट; एक आभूषण जो सिर पर धारण करते थे।
२८६ लटकि मुकुट झकोर = झकोर के साथ (हल खाकर) मुकुट का लटकाना (नीचे की ओर झुकाना)।

स्रवन धुनि सुनि नाद माहृत करत हिरदै कोर ।
सूर अग त्रिभग सुन्दर छबि निरखि तृन तोर ॥२८६॥

सुन्दर बोलत आवत बैन ।
ना जानौं तेहिं समय सखी री सब तन स्रवन कि नैन ।
रोम रोम में सब्द सुरति की नख-सिख ज्यौं चख ऐन ।
एते मान बनी चचलता सुनी न समझी सैन ।
तब तकि जकि ह्वै रही चित्र-सी पल न लगति चित चैन ।
सुनहु सूर यह सॉच कि सभ्रम सपन किधौ दिन रैन ॥२८७॥

निरखि सखि सुन्दरता की सीव ।
अधर अनूप मुरलिका राजति लटकि रहनि अध ग्रीव ।
मद-मद सुर पूरत मोहन राग मलार बजावत ।
कबहुँक रीझि मुरलि पर गिरिधर आपुहि रस भरि गावत ।
हरषत हैं लखि दसनावलि पगनि ब्रज-बनिता मन मोहत ।
मरकत मनि पुट बिच मुकताहल बदन धरे मनु सोहत ।
मुख बिकसत सोभा इक आवति मनु राजीव प्रकास ।
सूर अरुन आगमन देखि कै प्रफुलित भए हुलास ॥२८८॥

देखि री हरि के चचल नैन ।
खजन मीन मृगज चपलाई नहिं पटतर इक सैन ।
राजिवदल इदीवर सतदल कमल कुसेसै जाति ।
निसि मुद्रित प्रातहिं ये बिगसत वै बिगसत दिन राति ।

---

२८६. करत हिरदै कोर = हृदय मे घर (क्रोड) कर लेती है।
२८७ नख ..ऐन = नख से सिखा तक मानो आँखें ही आँखें है (आँखो का ही घर है) ।
२८८. अध ग्रीव = गर्दन झुकाकर। राजीव = कमल ।
२८९. कुसेसै = कमल की एक जाति ।

अरुन स्वेत सित झलक पलक प्रति को बरनै उपमाइ।
मनु सुरसति गंगा जमुना मिलि आगम कीन्हौ आइ।
अवलोकनि जलधार तेज अति तहाँ न मन ठहरात।
सूर स्याम लोचन अपार छबि उपमा सुनि सरमात ॥२८९॥

देखि सखी अधरनि की लाली।
मनि मरकत तैं सुभग कलेवर ऐसे हैं बनमाली।
मनौ प्रात की घटा सावली तापर अरुन प्रकास।
ज्यौं दामिनि बिच चमकि रहति है फहरत पीत सुबास।
कीधौं तरुन तमाल बेलि चढ़ि जुग फल बिंब सु पाक्यौ।
नासा कीर आइ मनो बैठौ लेत बनत नहिं ताक्यो।
हँसत दसन इक सोभा उपजति उपमा जदपि लजाइ।
मनौ नीलमनि पुट मुकतागन बदन भरि बगराइ।
किधौं बज्रकन लाल नगनि खचि तापर बिद्रुम पाति।
किधौ सुभग बंधूक कुसुम पर झलकत जलकन काति।
किधौं अरुन अंबुज बिच बैठी सुंदरताई आइ।
सूर अरुन अधरनि की सोभा बरनत बरनि न जाइ ॥२९०॥

द्वै लोचन साबित नहिं तेऊ।
बिनु देखे कल परति नही छन एते पर कीन्हे यह टेऊ।
बार बार छबि देख्यौइ चाहत साथी निमिष मिले हैं एऊ।
ते तौ ओट करत छिनहीं छिन देखत ही भरि आवत दोऊ।
कैसैं मैं उनकौं पहिचानौ नैन बिना लखिये क्यौ भेऊ।
ये तौ निमिष परत भरि आवत निठुर बिधाता दीन्हे जेऊ।

---

२८९ सित = शिति (संस्कृत) अर्थात् कृष्ण वर्ण। यों 'सित' सफेद के अर्थ में आता है।

२९०. मुकता = वस्त्र। बदन = रोरी। बगराइ = खोल दिये गये हैं।

२९१. भेऊ = भेद। ये जेऊ = जो कुछ निष्ठुर बिधाता ने दिये भी थे (दो नेत्र) वे पलक मारते ही भर आते हैं (फिर दिखाई नहीं पड़ता)।

कहा भई जौ मिली स्याम सौं तू जान्यौ जानै सब कोऊ।
सूर स्याम कौ नाम स्रवन सुनि दरसन नीकैं देत न ओऊ ॥२९१॥

स्याम सौं काहे की पहिचानि
निमिष निमिष वह रूप न वह छबि रति कीजै जेहि जानि।
इकटक रहत निरंतर निसिदिन मन मति सौं चित सानि।
एकौ पल सोभा की सीवा सकति न उर महँ आनि।
समुझि न परै प्रगट ही निरखति आनँद की निधि खानि।
सखि यह बिरह सँजोग कि समरस दुख-सुख लाभ कि हानि।
मिटति न घृत तैं होम-अगिनि रुचि सूर सु लोचन बानि।
इत लोभी उत रूप परमनिधि कोउ न रहत मिति मानि ॥२९२॥

कब री मिले स्याम नहि जानौं।
तेरी सौं कहि कहति सखी री अबहूँ नहि पहिचानौं।
खरिक मिले की गोरस बेचत की अबही की कालि।
नैननि अंतर होत न कबहूँ कहति कहा री आलि।
एकौ पल हरि होत न न्यारे नीकैं देखे नाहिँ।
सूरदास प्रभु टरत न टारैं नैननि सदा बसाहिँ ॥२९३॥

स्याम रंग रांची ब्रजनारि। और रंग सब दीन्हौ डारि।
कुसुम रंग गुरुजन पितु माता। हरित रंग भैनी अरु भ्राता।
दिना चारि मैं सब मिटि जैहै। स्याम रंग अजरायल रैहै।

---

२९२. इकटक ... सानि = मन, बुद्धि और चित्त को साथ मिलाकर मेरे नेत्र एकटक श्याम के साथ बने रहते है; उन्हे हृदय मे लाने का अवसर ही नही देते। बिरह... समरस = यह वियोग है, संयोग है अथवा दोनो के बीच की वस्तु है। होम ... रुचि = होम की अग्नि घृत डालने से तृप्त नही होती (और अधिक उभडती है)।
२९४. कुसुम = लाल रंग का एक पुष्प। अजरायल = अमिट।

उज्वल रंग गोपिका नारी। स्याम रंग गिरिवर के धारी।
स्यामहि में सब रंग बसेरौ। प्रगट बताइ देउं कहि बेरौ।
अरुन सेत सित सुंदर तारे। पीत रंग पीतांबर धारे।
नाना रंग स्याम गुनकारी। सूर स्याम रँग घोषकुमारी ॥२९४॥

यह सुनि कै हँसि मौन रही री।
ब्रज उपहास कान्ह राधा कौ यह महिमा जानी उन हीं री।
जैसी बुद्धि हृदय है इनकैं तैसीयै मुख बात कही री।
रवि कौ तेज उलूक न जानै तरनि सदा पूरन नभ ही री।
बिष कौ कीट बिषहिं रुचि मानै जानै कहा सुधारस ही री।
सूरदास तिल तेल सवादी स्वाद कहा जानै घृत ही री ॥२९५॥

श्री राधा का मुक्ता-माल खोना

सुनि री मैया काल्हि हीं मुतिसिरी गवाई।
सखिनि मिलै जमुना गई धौं उनहिं चुराई।
कीधौं जल ही मैं गई यह सुधि नहिं मेरैं।
तब तै मै पछितानि ही कहति न डर तेरैं।
पलक नही निसि कहुँ लगी मोहिं सपथ री तेरी।
इहिं डर तै में आजुहीं अति उठी सबेरी।
महरि सुनत चकित भई मुख ज्वाब न आवै।
सूर राधिका गुन भरी कोउ पार न पावै ॥२९६॥

सुनि राधा अब तोहिं न पत्यैहौं।
और हार चौकी हमेल अब तेरैं कंठ न नैहौं।

---

२९४ बेरौ = ब्यौरा।
२९५ तरनि ... री = सूर्य तो सदैव आकाश में पूर्णत प्रकाशित रहता है (किन्तु उलूक उसे देख नही पाता)।
२९६ मुतिसिरी = मोती की माला।

लाख टका की हानि करी तैं मो अब तोसौं लैहौं।
हार बिना ल्याएं लरिहौं री घर नहिं पैठन दैहौं।
जब देखौं ग्रीवहि मोतिसरी तब ही तौ सचु पैहौं।
नातरु सूर जनम भरि तेरौ नाम नहीं मुख लैहौं ।।२९७।।

जैहै कहा मुतिसरी मोरी।
अब सुधि भई लई वाही नै हँसत चली बृषभानु किसोरी।
अब ही मैं लीन्हे आवति हौ मेरै संग आव जनि कोरी।
देखौ धौं कहु करिहौ वाकौ बडे लोग सीखत है चोरी।
मोकौ आज अबेर लागि है ढूढूगी ब्रज घर घर खोरी।
सूर चली निधरक ह्वै सब सौं चतुर राधिका बातनि भोरी ।।२९८।।

धोरी मेरी गाइ बियानी।
सखनि कह्यौ तुम जेंवहु बैठे स्याम चतुरई ठानी।
गाइ नही ह्वा बछरा नाहीं ह्वा है राधा रानी।
सखा हँसत मन ही मन कहि कहि ऐसे गुननि निसानी।
जननी भेद नही कछु जानै बार बार अकुलानी।
सूर स्याम भूखौ उठि धायौ मेरै न गाइ बियानी ।।२९९।।

नवल निकुंज नवल नवला मिलि नवल निकेतन रुचिर बनाए।
बिलसत बिपिन बिलास बिबिध बर बारिज बदन बिकच रचु पाए।
लागत चंद्र मयूष सु तौ तनु लताभवन रध्रनि मग आए।
मनहुँ मदन बल्ली पर हिमकर सींचत सुधाधार सत नाए।
सुनि सुनि सोचनि स्रवन सुंदरी मौन किए मोदति मन लाए।
सूर सखी राधा माधव मिलि क्रीडत है रति पतिहिँ लजाए ।।३००।।

---

२९७ सचु पैहौ = प्रसन्न होऊँगी। नातरु लैहौ = नहीं तो जन्म भर तेरा नाम नहीं लूँगी (क्रोधनाट्य)। बातनि भोरी = बातों में भुलावा देकर।

३००. मयूष = किरण। रध्रनि = छिद्रो मे ।

रीझे स्याम नागरी छबि पर।
प्यारी एक अंग पर अटकी यह गति भई परसपर।
देह दसा की सुधि नहिं काहू नैन नैन मिलि अटके
इंदीबर राजीव कमल पर जुग खजन जनु लटके।
चकित भए तन की सुधि आई वन ही मैं भइ रानि।
सूर स्याम स्यामा निरखत हरि सो छबि की एक भाँति ॥३०१॥

राधा अति ही चतुर प्रवीन।
कृष्न कौ सुख दै चली हँसि हंसगति कटि छीन।
हार कैं मिस इहाँ आई स्याम मनि कै काज।
भयौ सब पूरन मनोरथ मिले श्री ब्रजराज।
नाठि आवत छोरि कै मोतिसरी कीन्हीं हाथ।
सखी आवत देखि राधा लई ताकौं साथ।
जुवति बूझति कहाँ नागरि निसि गई इक याम।
सूर ब्यौरौ कहि मनायो मैं गई नेहिं काम ॥३०२॥

राधा स्याम स्याम राधा रँग।
पिय प्यारी कौ हिरदयँ राखत प्यारी रहति सदा पिय कै सँग।
नागरि नैन चकोर बदन-ससि, पिय मधुकर अंबुज सुंदरि मुख
चाहत अरस परस ऐसे करि हरि नागरि नागरि नागर सुख।

---

३०१. एक अंग पर अटकी = किसी एक अंग को देखकर ठहर गई।
एक भाँति = बेजोड़, अप्रतिम।
३०२. ब्यौरो = हवाला।
३०३ हरि नागरि ... सुख = श्रीकृष्ण राधा का और राधा श्रीकृष्ण
का इसी प्रकार सुखपूर्वक स्पर्श चाहते हैं।

सुख दुख सोचि रहत मन ही मन तब जानत तन कौ यह कारन।
सुनहु सूर कुलकानि जीय दुख दोऊ फल दोउ करत बिचारन ॥३०३॥

बरनौ श्री बृषभानु कुमारि।
चित दै सुनौ स्याम सुंदर छबि रति नाही अनुहारि।
प्रथमहि सुभग स्याम बेनी की सोभा कहौं बिचारि।
मानौ फनिग रह्यौ पीवन कौं ससि मुख सुधा निहारि।
कहिए कहा सीस सेंदुर कौ पिकतौ रही पचिहारि।
मानौ अरुन किरनि दिनकर की पसरी तिमिर बिदारि।
भृकुटी बिकट निकट नैननि कै राजत अति बर नारि।
मनहुँ मदन जग जीति जेर करि राख्यौ धनुष उतारि।
ता बिच आड बनी केसर की दीन्ही सखिनि सँवारि।
मानौ बँधी इवु मडल मे रूप सुधा की पारि।
चपल नैन नासा बिच सोभा अधर सुरग सुठार।
मनो मध्य खजन सुक बैठ्यौ लुब्ध्यौ बिब बिचार।
तरिवन सुघर अधर नकबेसरि चिबुक चारु रुचिकारि।
कठ सिरी दुलरी तिलरी पर नहिँ उपमा कहुँ चारि।
सुरँग गुलाब माल कुच मडल निरखत तन मन वारि।
मानौ दिमि निर्धूम अगिनि करि तप बैठे त्रिपुरारि।

---

३०३ सुख . कारन = सयाग के सुख और वियोग के दुख का बिचार मन ही मन करते हैं, तब ज्ञात होता है कि यह शरीर धारण करने का आवश्यक फल है। सुनहु विचारन = सूरदास कहते हैं कि एक ओर लोक-मर्यादा और दूसरी ओर प्राणो को दुखी रखना (वियोग मे) इन दोनो फलो का (शरीर धारण के अवश्यभावी परिणामों का) वे दोनो विचार करते है।

३०४ पारि = दीवाल या मेड।

जो मेरी कृत मानहु मोहन करि ल्याऊं मनुहारि।
सूर रसिक तब ही पै बदिहौं मुरली सकौ सँभारि ॥३०४

नयनों के प्रति

नैना नहिं आवें तुव पास।
कैसेंहु करि निकसे ह्या तें अति ही भए उदास।
अपने स्वारथ के सब कोई मैं जानी यह बात।
यह सोभा सुख लूटि पाइ कै अब वे कहा पत्यात।
षटरस भोजन त्यागि कहौ को रूखी रोटी खात।
सूर स्याम रस रूप माधुरी एते पर न अघात ॥३०५॥

नैन परे हरि पाछे री।
मिले अतिहि अतुराइ स्याम कौं रीझे नटवर काछे री।
निमिष नहीं लागत एकटक ही निसि बासर नहिं जानत री।
निरखत अंग अंग की सोभा ताही पर रुचि मानत री।
नैन परे परबस री माई तिन कौं उन बस कीन्हे री।
सूरज प्रभु सेवा करि रिझए उन अपने करि लीन्हे री ॥३०६॥

इन बातनि कहुँ होति बड़ाई।
लूटत हैं छबि रासि स्याम की मनौ परी निधि पाई।
थोरें ही में उघरि परैंगे अतिहिं चले इतराई।
डारत खात देत नहिं काहूं ओछे घर निधि आई।

---

३०४. कृत = उपकार। मनुहारि = मनाना, चिरिया बिनती करना। मुरली सकौ सँभारि = वंशी हाथ मे रख सको।

३०५ पत्यात = विश्वास करना; धोखा खाना।

३०७. परी निधि = पड़ा हुआ खज़ाना। उघरि परैंगे = खुल जायँगे। (असलियत छिपी नहीं रहेगी)। ओछे घर = ओछे मनुष्य के घर में।

यह सपति है तिहू भुवन की सबै इनहिं अपनाई।
धोखैं रहत सूर क स्वामी काहू नहीं जनाई ॥३०७॥

इन नैननि मोहिं बहुत सतायौ।
अबलौं कानि करी मै सजनी बहुतै मूंड चढ़ायौ।
निदरे रहत गहे रिस मोसौ मोहीं दोष लगायौ।
लूटत आपुन स्त्री अँग सोभा मनु निधनी धन पायौ।
निसिहू दिन ये करत अचगरी मनहि कहा धौ आयौ।
सुनहु सूर इनकौं प्रति पालत आलस नेकु न लायौ ॥३०८॥

नैन करे सुख हम दुख पावे।
ऐसौ को परबेदन जानै जासौ कहि जु सुनावें।
तातै मौन भलौ सबही तै कहि क्यौ मान गँवावे।
लोचन मन इन्द्री हरि कौ भजि तजि हमकौ रिस पावें।
वै तौ गए आपने कर तै बृथा जीव भरमावे।
सूर स्याम हैं चतुर सिरोमनि तिनसौ भेद सुनावे ॥३०९॥

नैननि तै यह भई बड़ाई।
घर घर इहै चबाव चलावत हम सौं भैंट न माई।
कहा स्याम मिलि बैठी कबहू कहनावति ब्रज ऐसी।
लूटहिं ये, उपहास हमारौ, यह तौ बात अनैसी।
एई घर घर कहत फिरत है कहा करै पचिहारी।
सूर स्याम यह सुनत हँसत हैं नैन किए अधिकारी ॥३१०॥

---

३०७. काहू नहीं जनाई = किसी ने उन्हें मैत्री के दुर्गुण नहीं बताये।
३०९. परबेदन = दूसरे की वेदना या दुःख। जीव भरमावे = जीव को भ्रमित करते रहते हैं।
३१०. कहनावति = किंवदन्ती; चर्चा।

जे लोभी ते देहिँ कहा री।
ऐसे नैन नहीं मैं जाने जैसे निठुर महा री।
मन अपनौ कबहू बरु ह्वैहै ये नहिँ ह्वोहिँ हमारे।
जब तें गए नंदनदन ढिग तब तै फिरि न निहारे।
कोटि करौ वे हमहिँ न मानैं गीधे रूप अगाध।
सूर स्याम जौ कबहूं ग्रासै रहै हमारी साध ॥३११॥

ऐसे अपस्वारथी नैन।
अपनोइ पेट भरत है निसिदिन औरनि लैन न दैन।
बस्तु अपार परची ओछें कर ये जानत घटि जैहै।
को इनसौ समुझाइ कहै यह दीन्हैं ही अधिकैहै।
सदा नही रैहौ अधिकारी नाउँ राखि जौ लेते।
सूर स्याम सुख लूटैं आपुन औरनि हूं कीं देते ॥३१२॥

सेवा इनकी बृथा करी।
ऐसे भए दुखदायक हमको एही सोच मरी।
घूंघट ओट महल मै राखत पलक कपाट दिऐँ।
ये जोइ कहै करैं हम सोई नाहिन भेद हिऐँ।
अब पाई इनकी लँगराई रहते पेट समाने।
सुनहु सूर लोचन बटपारी गुन जोइ सोइ प्रगटाने ॥३१३॥

नैन भए बोहित के काग।
उडि उडि जात पार नहिँ पावै फिरि आवत नहिँ लाग।

---

३११. रहै हमारी साध = हमारी अभिलाषा पूरी हो।
३१२. नाउँ राखि = नाम कमाना; यश-लाभ करना।
३१३. पेट समाने = हृदय में पैठे रहते थे। बड़ी अभिन्नता जनाते थे।
३१४. बोहित के काग = जहाज के कौए। लाग = ठहरने का स्थान; अड्डा।

ऐसी दसा भई री इनकी अब लागे पछितान।
सो बरजत बरजत उठि धाए नहिं पायौ अनुमान।
वह समुद्र, ओछे बासन ये, धरैं कहा सुख-रासि।
सुनहु सूर ये चतुर कहावत वह छबि महा प्रकासि ॥३१४॥

नैननि सौं झगरौ करिहौ री।
कहा भयौ जौ स्याम संग हैं बांह पकरि सन्मुख लरिहौं री।
जनमहि तै प्रतिपाल बडे किए दिन दिन कौ लेखौ करिहौ री।
रूप लूटि कीन्हौ तुम काहैं अपने बाटे कौ धरिहौ री।
एक मातु पितु भवन एक रहे मैं काहे उनकौं डरिहौ री।
सूर अंस जौ नहीं देहिंगे उनकैं ढँग मैं हू ढरिहौ री ॥३१५॥

आँखों के प्रति

अँखियाँ हरि कैं हाथ बिकानी।
मृदु मुसकानि मोल इन लीन्ही यह सुनि सुनि पछितानी।
कैसें रहत रही मेरें बस अब कुछ औरै भाति।
अब वै लाज मरतिँ मोहिँ देखत बैठी मिलि हरि पाति।
सपने की-सी मिलन करति हैं कब आवति कब जाति।
सूर मिली हरि नँदनदन कौ अनत नही पतियाति ॥३१६॥

---

३१४. वह समुद्र = कृष्ण का सौंदर्य अपार समुद्र है। ओछे बासन = ये छिछले बर्तन हैं (नेत्र)।

३१५. बाटे = हिस्सा। उनकैं ..ढरिहौ = उन्ही की आदत मे ? पकडूंगी।

३१६ सपने की-सी मिलन करति है = स्वप्न का मिलन जैसा अवास्तवि होता है वैसा ही इनका मिलन है।

अँखियन स्याम अपनी करी।
जैसैंही उन मुँह लगाई तैसैंही ये ढरीं।
इन किए हरि हाथ अपनैं दूरि हमतैं परीं।
रहति बासर रैनि इकटक छाँह घाम खरीं।
लोक लाज निकासि निदरी नही काहुहिँ डरी।
ए महा अति चतुर नागरि चतुर नागर हरी।
रहति डोलत संग लागी डटति नाहीं टरी।
सूर हम जब हटकि हटकतिं बहुत हम पर लरी ॥११७॥

धन्य धन्य अँखियां बड़ भागिनि।
जो बिनु स्याम रहति नहिँ नैंकहु कीन्ही बनै सुहागिनि।
जिनकी नही अग तैं टारत निसिदिन दरसन पावैं।
तिनकी सरि कहि कैसैं कोई जे हरि कैं मन भावैं।
हम ही नैं ये भईं उजागरि अब हम पै रिस मानैं।
सूर स्याम अति बिबस भए है कैसै रहत लुभानै ॥११८॥

रास

सरद निसि देखि हरि हरष पायौ।
बिपिन बृंदा सघन सुभग फूले सुमन रास रुचि स्याम के मनहिँ आयौ।
परम उज्वल रैनि छिटकि रहा भूमि पर सद्य फूल तरुन प्रति लटकि लागे।
तैसाई परम रमनीक जमुना पुलिन त्रिबिध बहै पवन आनद जागे।
राधिका रवन बन भवन सुख देखिकैं अधर धरि बेनु सुललित बजाई।
नाम लै लै सकल गोपकन्यानि कै सबनि कैं स्रवन वह धुनि सुनाई।

---

३१७ डटति = डटकर बैठना; स्थिर होना।
३१८. उजागरि = यशस्विनी।

सुनत उपज्यौ मैन परत काहु न चैन सब्द सुनि स्रवन भइ बिकल भारी।
सूर प्रभु ध्यान धरि कै चली उठि सबै भवन जन नेह तजि घोष नारी ।।११९।।

मुरली मधुर बजायौ स्याम।
मन हरि लियौ भवन नहिं भावै ब्याकुल ब्रज की बाम।
भोजन भूषन की सुध नाहीं तन की नहीं सँभार।
गृह गुरु लाज सूत सो तोरयौ डरी नहीं ब्यवहार।
करत सिँगार बिबस भईं सुंदरि अंगनि गईं भुलाइ।
सूर स्याम बन बेनु बजावत चित हित रास रमाइ ।।१२०।।

करत सिंगार जुवती भुलाहीं।
अंग सुधि नहीं उलटे बसन धारहीं एक एकनि कछू सुरति नाहीं।
नैन अंजन अधर अजहीं हरष सौं स्रवन ताटंक उलटे सँवारैं।
सूर प्रभु मुख ललित बेनु धुनि बन सुनत चली बेहाल अंचल न धारैं ।।१२१।।

मन गयौ चित्त स्याम सौं लाग्यौ।
नाना बिधि जेवन करि परस्यौ पुरुष जेंवावत त्याग्यौ।
इक पय प्यावत चली तजि बालक छोह नहीं तब कीन्हौ।
चली धाइ अकुलाइ सकुच तजि बोलि बेनु धुनि लीन्हौ।
इक पति सेवा करत चली उठि ब्याकुल तनु सुधि नाहिं।
सूर निदरि बिधि की मरजादा निसि बन कौं सब जाहिं ।।१२२।।

घर घर तें निकसीं ब्रजबाला।
लै लै नाम जुवति जन जन के मुरली मैं सुनि सुनि ततकाला।

---

११९ उपज्यौ मैन = कामना उत्पन्न हुई या जगी (मदन शब्द का प्रयोग सूरदास जी ने बहुत व्यापक अर्थ मे किया है—वह इच्छा के स्फुरित होने का द्योतक है, इसके स्थूल (अनभीष्ट) अर्थ नहीं लगाने चाहिए)।

१२० सूत सौं = कच्चे धागे के समान।

इक मारग इक घर तै निकरी इक निकसति इक भई बेहाल।
इक नाही भवननि तै निकरी तिन पै आए परम कृपाल।
यह महिमा एई पै जानै कवि सौं कहा बरनि यह जाइ।
सूर स्याम रस रास रीति सुख बिन देखै आवै क्यौं गाइ ॥३२३॥

देखि स्याम मन हरष बढायौ।
तैसियै सरद चांदनी निरमल तैसोइ रास रंग उपजायौ।
तैसियै कनक बरन सब सुंदरि इहिं सोभा पर मन ललचायौ।
तैसियै हंससुता पवित्र तट तैसोइ कल्पबृच्छ सुखदायौ।
करौ मनोरथ पूरन सबके इहिं अंतर इक खेद उपायौ।
सूर स्याम रचि कपट चतुरई जुबतिनि कैं मन यह भरमायौ ॥३२४॥

यह जुवतिनि कौ धरम न होइ।
धिग सो नारि पुरुष जो त्यागै धिग सो पति जो त्यागै जोइ ।
पति कौ धरम रहै प्रतिपालै जुवती सेवा ही कौ धर्म।
जुवती सेवा तऊ न त्यागै जो पति कोटि करै अपकर्म ।
बन मैं रैनि बास नहिं कीजै देख्यौ बन बृंदाबन आइ ।
त्रिबिध सुमन सीतल जमुना जल त्रिबिध समीर परस सुखदाइ ।
घर ही मैं तुम धरम सदा ही सुत पति दुखित होत तुम जाहु।
सूर स्याम यह कहि परबोधत सेवा करहु जाइ घर नाहु ॥३२५॥

निठुर बचन सुनि स्याम के जुवती बिकलानी।
चकित भईं सब सुनि रही नहिं आवै बानी।
मनौ तुषार कमलनि परयौ ऐसैं कुम्हिलानी।
मनौ महानिधि पाइ कै खोएँ पछितानी।

---

३२४. हंससुता = सूर्य की कन्या, यमुना।
३२५. परस = स्पर्श। परबोधत = प्रबोध या शिक्षा देते हैं। नाहु = नाथ, पति।

ऐसी ह्वै गई तन दसा पिय की सुनि बानी ।
सूर बिरह ब्याकुल भई बूड़ीं बिन पानी ॥१२६॥

निठुर बचन जनि बोलहु स्याम ।
आस निरास करौ जनि हमरी ब्याकुल बचन कहति हैं बाम ।
अंतर कपट दूरि करि डारौ हम तन कृपा निहारौ ।
कृपासिंधु तुमकौं सब गावत अपनौ नाम सँभारौ ।
हमकौ सरन और नहिं सूझै कापै हम अब जाहिं ।
सूरदास प्रभु निज दासनि कैं चूक कहा पछिताहिं ॥१२७॥

तुम हौ अन्तरजामि कन्हाई ।
निठुर भए कत रहत इते पर तुम जानत नहिं पीर पराई ।
पुनि पुनि कहत जाहु ब्रज सुंदरि दूरि करौ पिय यह चतुराई ।
आपुहि कही करौ पति सेवा ता सेवा कौ हम हैं आईं ।
जो तुम कहौ तुमहि सब छाजै कहा कहैं हम प्रभुहि सुनाई ।
सुनहु सूर इहैं तन त्यागैं हम पै दोष गयौ नहिं जाई ॥१२८॥

हरि सुनि दीन बचन रसाल ।
बिरह ब्याकुल देखि बाला भरे नैन बिसाल ।
चारु आनन लोर धारा बरनि कापै जाइ ।
मनहुँ सुधा तडाग उछले प्रेम प्रगटि दिखाई ।

---

१२६. बूड़ीं बिन पानी = बिना पानी के डूबी अर्थात् जिसकी संभावना नहीं थी ऐसा दुःख आ पड़ा, बेमौत मरी ।

१२७ संभारौ = स्मरण करो अथवा नाम की मर्यादा की रक्षा करो ।

१२८ छाजै = शोभा देता है; फबता है ।

१२९. लोर = आँसू । सुधा तड़ाग उछले = सुधा का तालाब उद्वेलित हो उठा ।

चन्द्रमुख पर निडरि बैठे सुभग जोर चकोर।
पियत मुख भरि भरि सुधा ससि गिरत तापर भोर।
हरषि बानी कहत पुनि पुनि धन्य धनि ब्रजबाल।
सूर प्रभु करि कृपा जोह्यौ सदय भए गोपाल ॥३२९॥

जहाँ स्यामघन रास उपायौ।
कुमकुम जल सुख बृष्टि रमायौ।
धरनी रज कपूरमय भारी।
बिबिध सुमन छबि न्यारी न्यारी।
जुवती जुरि मंडली बिराजैं।
बिच बिच कान्ह तरुनि बिच भ्राजैं।
अनुपम लीला प्रगट दिखायौ।
गोपिनि कौ कीयौ मन भायौ।
बिच स्त्री स्याम नारि बिच गोरी।
कनक खंभ मरकत खचि धोरी।
सोभा सिंधु हिलोर हिलोरी।
सूर कहा मति बरनै थोरी ॥३३०॥

बनी ब्रजनारि सोभा भारि।
पगनि जेहरि लाल लहँगा अंग पँचरँग सारि।

---

३२९. जोर चकोर = चकोरो की जोड़ी। सुधा ससि = चंद्रमा की सुधा का पान करते हैं। गिरत तापर भोर = भूलकर (गलती से) कुछ गिरा भी देते है। जोह्यौ = देखा।

३३०. उपायौ = रचना की। बिच . धोरी = श्रीकृष्ण और गोपियाँ इस प्रकार एक दूसरे के बीच मे है मानों सोने के स्तंभो मे मरकत (नील) मणि जड़कर बैठाई गई हो।

३३१. जेहरि = पायजेब, पैजनी (एक आभूषण)।

किंकिनी कटि क्वनित कंकन कर चुरी झनकार।
हृदय चौकी चमकि बैठी सुभग मोतिनि हार।
कठस्री दुलरी बिराजति चिबुक स्यामल बिंदु।
सुभग बेंदी ललित नासा रीझि रहे नँदनंद।
स्रवन पर ताटंक की छबि गौर ललित कपोल।
सूर प्रभु बस अति भए हैं निरखि लोचन लोल ॥३३१॥

निरखि ब्रजनारि छबि स्याम लाजै।
बिबिध बेनी रची माग पाटी सुभग भाल बेंदी बिंदु इंदु लाजै।
स्रवन ताटंक लोचन चारु नासिका हंस खंजन कीर कोटि लाजै।
अधर बिद्रुम दसन नहीं छबि दामिनी सुभग बेसरि निरखि काम लाजै।
चिबुक तर कठस्री माल मोतीनि छबि कुच उचनि हेमगिरि अतिहि लाजै।
सूर श्री स्वामिनी नारि ब्रज भामिनी निरखि पिय प्रेम सोभा सु लाजै ॥३३२॥

मानौ माइ घन घन अंतर दामिनि।
घन दामिनि दामिनि घन अंतर सोभित हरि ब्रजभामिनि।
जमुन पुलिन मल्लिका मनोहर सरद सुहाई जामिनि।
सुंदर ससि गुन रूप राग निधि अंग अंग अभिरामिनि।
रच्यौ रास मिलि रसिक राइ सौं मुदित भईं ब्रजभामिनि।
रूपनिधान स्याम सुंदर घन आनँद मन बिस्रामिनि।
खंजन मीन मराल हरन छबि भाव भेद गजगामिनि।
को गति गुनहीं सूर स्याम सँग काम बिमोह्यौ कामिनि ॥३३३॥

---

३३१. चौकी = एक चौकोर आभूषण।

३३२. बेंदीबिंदु = सिरबेंदी, टीका या टिकुली।

३३३. मानौ माइ = विस्मयसूचक संबोधन। घन घन अंतर दामिनि = प्रत्येक घन के साथ एक दामिनी हो। घन दामिनि भामिनि = श्रीकृष्ण और गोपियाँ इस प्रकार शोभित है जैसे घन के बगल मे बिजली और बिजली के बगल मे घन हो (पृथक् पृथक् रूप)।

रासमंडल मध्य स्याम राधा।
मनौ घन बीच दामिनी कौधति सुभग एक है रूप द्वै नाहिं बाधा।
नायिका अष्ट अष्टहु दिसा सोहहीं बनी चहुँपास सब गोपकन्या।
मिले सब संग नहिं लखनि कोउ परसपर बने षटदससहस्र कृष्न सेन्या।
सजें सिंगार नवसात जगमगि रह्यो अंग भूषन रैनि बनी तैसी।
सूर प्रभु नवल गिरिधर नवल राधिका नवल ब्रजसुता मंडली तैसी ॥३३४॥

स्याम तनु राजति पीत पिछौरी।
उर बनमाल काछिनी काछे कटि किंकिनि छबि रोरी।
बेनी सुभग नितंबनि डोलति मंदगामिनी नारि।
सूथन जघन बाधि नारावँद तिरनी पर छबि भारि।
नखनि रंग जावक की सोभा देखत पिय मन भावत।
सूरदास प्रभु तनु त्रिभंग ह्वै जुवतिनि मनहिं रिझावत ॥३३५॥

नृत्यत स्याम नाना रंग।
मुकुट लटकनि भृकुटि मटकनि धरे नटवर अंग।
चलत गति कटि क्वनित किंकिनि घूँघुरू झनकार।
मनौ हंस रसाल बानी अरस परस बिहार।
लसति कर पहुँची सो पुजय मुद्रिका अति ज्योति।
भाव सौं भुज फिरनि जबही तबहिं सोभा होति।
कबहुँ नृत्यत नारि गनि पर कबहुँ नृत्यत आप।
सूर के प्रभु रसिक की मनि रच्यौ रास प्रताप ॥३३६॥

निरतत हैं दोउ स्यामा स्याम।
अंग मगन पिय ते प्यारी अति निरखि चकित ब्रजबाम।

---

३३४. घन. . .कौधति = घन के भीतर बिजली चमकती हो (संयुक्त रूप)। नायिका = मुख्य आठ गोपियाँ। सैन्या = सैन्य, दल।
३३५. रोरी = ध्वनि। सूथन = पायजामा जो लहँगे के साथ पहनते हैं। तिरनी = नीबी, घाँघरा बाँधने की डोरी।

तिरप लेति चपला सी चमकति झमकत भूषन अंग।
या छबि पर उपमा कहुँ नाही निरखत बिबस अनंग।
स्री राधिका सकल गुन पूरन जाकै स्याम अधीन।
सँग तैं होति नही कहु न्यारी भई रहति अति लीन।
रस समुद्र मानौ उछलित भयौ सुदरता की खानि ।
सूरदास प्रभु रीझि थकित भए कहत न कछू बखानि ॥३३७॥

उघटत स्याम निरततिँ नारि।
धरे अधर उपग उपजै लैत है गिरिधारि।
ताल मुरज रबाब बीना किन्नरी रमसार।
सब्द सग मृदग मिलवत मुघर नदकुमार।
नागरी सब गुननि आगरि मिलि चलति पिय संग।
कबहुँ गावति कबहुँ निर्तनि कबहुँ उघटनि रंग।
मडली गोपाल गोपी अग अँग अनुहारि ।
सूर प्रभु धनि नवल भामिनि दामिनी छबि डारि ॥३३८॥

जब हरि मुरली नाद प्रकास्यौ ।
जगम जड थावर चर कीन्हे पाहन जल जु बिकास्यौ।
स्वर्ग पताल दसौ दिसि पूरन धुनि आच्छादित कीन्हौ।
निसि वर कल्प समान बढ़ाई गोपिनि कौ सुख दीन्हौ।
मैमत भए जीव जल थल के तनु की सुधि न सँभार।
सूर स्याम मुख बेनु मधुर सुनि उलटे सब ब्यवहार ॥३३९॥

---

३३७ तिरप = नाच की एक गति।

३३८. उघटत = ताल का सकेत करते हैं। उपंग = एक मुखवाद्य। उपजै लैत = बँधी तानो के अतिरिक्त नई ताने मिलाना। ताल..... रससार = भिन्न भिन्न बाजो के नाम।

३३९. पाहन = पत्थर। मैमत = मस्त, मतवाला ।

मुरली सुनत अचल चले।
थके चर जल झरत पाहन बिफल बृच्छनि फले।
पय स्रवत गोधननि थन तैं प्रेम पुलकित गात।
झुरे द्रुम अंकुरित पल्लव बिटप चंचल पात।
सुनत खग मृग मौन साध्यौ चित्र की अनुहारि।
धरनि उमँगि न माति धर मैं जती जोग बिसारि।
ग्वाल गृह गृह सहज सोवत उहै सहज सुभाइ।
सूर प्रभु रस रास कैं हित सुखद रैनि बढाइ ॥३४०॥

आजु हरि अदभुत रास रचायौ।
एकहि सुर सब मोहित कीन्हे मुरली नाद सुनायौ।
अचल चले चल थकित भए सब मुनिजन ध्यान भुलायौ।
चंचल पवन थक्यौ नहिं डोलत जमुना उलटि बहायौ।
थकित भयौ चंद्रमा सहित मृग सुधा समुद्र बढ़ायौ।
सूर स्याम गोपिनि सुख दायक लायक झलक दिखायौ ॥३४१॥

स्यामा स्याम रिझावति भारी।
मन मन कहति और नहिं मो-सी पिय कौं कोऊ प्यारी।
ध्रुवा छंद ध्रुवपद जस हरिकौ हरि ही गाइ सुनावति।
आपुन रीझि कंत कौ रिझवति यह जिय गर्ब बढावति।
नृत्यति उघटति गति सँगीत पद सुनत कोकिला लाजति।
सूर स्याम नागर अरु नागरि सुलप मंडली राजति ॥३४२॥

तब नागरि अति गर्ब बढायौ।
मो समान त्रिय और नहीं कोउ गिरिधर मैं ही बस करि पायौ।

---

३४०. धरनि   धर = पृथ्वी उमंगित होकर अपने में नहीं समाती।
३४२. सुलप मंडली = छोटी-सी मंडली में (जिसमें चुनी हुई गोपियाँ हैं)।

जाइ जोइ कहति करत सोइ सोइ पिय मेरैं हित यह रास उपायो।
सुन्दरि चतुर और नहि मो-सी देह धरे कौ भाव जनायौ।
कबहुँक बैठि जाति हरि कर धरि कबहुँ कहति मै अति स्रम पायौ।
सूर स्याम गहि कंठ रही त्रिय कंध चढ़ौ यह बचन सुनायौ ॥३४३॥

तब हरि भए अंतरधान।
जब कियौ मन गरब प्यारी कौन मो-सी आन।
अति थकित भइ चलति मोहन चलि न मो सौं जाइ।
कंठ भुज गहि रही यह कहि लेहु जबहिं चढ़ाइ।
गए संग बिसारि रस मै बिरस कीन्ही बाल।
सूर प्रभु दुरि चरित देखत तुरत भई बेहाल ॥३४४॥

बिकल ब्रजनाथ बियोगिनि नारि।
हा हा नाथ अनाथ करौ जनि टेरति बाहँ पसारि।
हरि जू के लाड गरब जो तनु सखि सकी न बचन सँभारि।
अनियत है अपराध हमारौ नहिँ कछु दोष मुरारि।
ढूढति बाट घाट बन घन तम मुरछि नैन जल धारि।
सूरदास अभिमान देह के बैठी सरबस हारि ॥३४५॥

जो देखै द्रुम के तरें मुरछी सुकुमारी।
चकित भईं सब सुन्दरी यह राधा नारी।
याही को खोजति सबै यह रही कहाँ री।
धाइ परी सब सुन्दरी जो जहाँ तहाँ री।

---

३४३. देह धरे कौ भाव = अहंता, अपने अस्तित्व की लौकिक भावना।
स्रम पायौ = थक गई हूँ।
३४४ रस मै बिरस = रंग में भंग।
३४५. बाहँ पसारि = दीनतापूर्वक ।

तन की तनकहूँ सुधि नहो ब्याकुल भईं बाला।
यह तौ अति बेहाल है कहँ गए गुपाला।
बार बार बूझति सबै नहिं बोलति बानी।
सूर स्याम काहैं तजी कहि सब पछितानी ॥३४६॥

स्याम सबनि कौं देखही वै देखति नाहीं।
जहाँ तहाँ ब्याकुल फिरैं तनु धीरज नाहीं।
कोउ बंसीबट कौ चली कोउ बन घन जाहीं।
देखि भूमि वह रास की जहँ तहँ पग छाहीं।
सदा हठीली लाडिली कहि कहि पछिताहीं।
नैन सजल जल ढारिकै ब्याकुल मन माहीं।
एक एक ह्वै ढूढहीं तरुनी बिकलाहीं।
सूरज प्रभु कहुँ नहिं मिलै ढूंढति द्रुम पाहीं ॥३४७॥

कहि धौ री बन बेलि कहू तुम देखे हैं नँदनदन।
बूझौ धौं मालती कहू तै पाए हैं तनुचदन।
कहि धौ कुंद कदम्ब बकुल बट चंपक ताल तमाल।
कहि धौ कमल कहा कमलापति सुन्दर नैन बिसाल।
स्याम स्याम कहि कहति फिरतिं यह धुनि बृंदाबन छायौ।
गरब जानि पिय अंतर ह्वै रहे सो मै बृथा बढायो।
अब बिनु देखें कल न परति छिन स्याम सुँदर गुन गायो।
मृग मृगनी द्रुम बन सारस खग काहू नहीं बतायौ।
मुरली अधर सुधारस लै तरु रहे जमुन के तीर।
कहि तुलसी तुम सब जानति हौ कहँ घनस्याम सरीर।
कहि धौ मृगी मया करि हम सौ कहि धौ मधुप मराल।
सूरदास प्रभु के तुम संगी हैं कहँ परम दयाल ॥३४८॥

---

३४७. पग छाहीं = पैरों के चिह्न।

३४८. तनुचदन = चंदन के समान शीतल, सुख देनेवाले। कुंद = प्रसिद्ध सफेद पुष्प। बकुल = मौलसरी।

अति ब्याकुल भईं गोपिका ढूढ़तिं गिरिधारी।
बूझति हैं बन बेलि सौ देखे बनवारी।
जाही जूही सेवती करना कनिआरी।
बेलि चमेली मालती बूझतिँ द्रुम डारी।
खूभा मरुआ कुंद सौ कहै गोद पसारी।
बकुल बहुल बट कदम पै ठाढी ब्रजनारी।
बार बार हा हा करैं कहुं हौ गिरिधारी।
सूर स्याम कौ नाम लै लोचन जल ढारी ।।३४९।।

प्रगट भए नँदनदन आइ।
प्यारी निरखि बिरह अति ब्याकुल कर तैं लई उठाइ।
उभय भुजा भरि अंकम दीन्हौ राखी कंठ लगाइ।
प्रानहु तैं प्यारी तुम मेरैं यह कहि दुख बिसराइ।
हँसत भए अतर हम तुम सौ सहज खेल उपजाइ।
धरनी मुरझि परी तुम काहे कहा गई चतुराइ।
राधा सकुचि रही मन जान्यौ कह्यौ न कछू सुनाइ।
सूरदास प्रभु मिलि सुख दीन्हौ दुख डारयौ बिसराइ ।।३५०।।

बहुरि स्याम सुख रास कियौ
भुज भुज जोरि जुरी ब्रजबाला वैसं ही रस उमगि हियौ।
वैसैहि मुरली नाद प्रकास्यौ वैसैहि सुर नर बस्य भए।
वैसैहि उडगन सहित निसापति वैसैहि मारग भूलि गए।

३४९. जाही = एक प्रकार की चमेली । जूही = यूथिका पुष्प । सेवती = सफेद गुलाब । करना = सुदर्शन (एक पुष्प)। कनिआरी = कर्णिकार या कनकचपा । बेलि = बेला। खूभा = एक गुच्छेदार फूल । मरुआ = बन-तुलसी की जाति का पौधा ।

वैसीहि दसा भई जमुना की वैसैहि गति जनि पवन थक्यौ।
वैसैहि नृत्यत रंग बढ़ायौ वैसैहि बहुरौ काम जक्यौ।
घटै निसा वैसैहि मन जुवती वैसैहो हरि मर्दनि भजै।
सूर स्याम वैसेइ मनमोहन वैसैहि प्यारी निरखि लजै॥३५१॥

बिहरत रास रंग गुपाल।
नवल स्यामहिं संग सोभित नवल सब ब्रजबाल।
सरद निसि अति नवल उज्वल नव लता बन धाम।
परम निर्मल पुलिन जमुना कल्पतरु विस्राम।
कोस द्वादस रास परिमिति रच्यौ नंद कुमार।
सूर प्रभु सुख दियौ निसि रमि काम कौतुकहार॥३५२॥

रास रमि स्रमित भई ब्रजबाल॥
निसि सुख दै जमुना तट लै गए भोर भयौ तिहिं काल।
मनकामना भई परिपूरन रही न एकौ साध।
षोडस सहस नारि सँग मोहन कीन्हौ सुख जु अगाध।
जमुना जल बिहरत नँदनंदन संग मिली सुकुमारि।
सूर धन्य धरनी बृंदावन रबितनया सुखकारि॥३५३॥

बिहरत हैं जमुना जल स्याम।
राजति हैं दोउ बाहा जोरी दंपति अरु ब्रजबाम।
कोउ ठाढ़ी जल जानु जंघ लौं कोउ कटि हिरदै ग्रीव।
यह सुख बरनि सकै ऐसो को सुन्दरता की सीव।
स्याम अंग चंदन की आभा नागरि केसर अंग।
मलयज पंक कुमकुमा मिलि कै जल जमुना इक रंग।

---

५१. जक्यौ = भौचक होना।
५२. परिमिति = पर्यंत, सीमा तक। काम कौतुकहार = विनोद-लीला करनेवाले।
५३ साध = इच्छा।

सिसि स्रम मिट्यौ मिट्यौ तनु आलस परसि जमुन भइ पावन।
सूर स्याम जल मध्य जुवतिगन जन जन के मनभावन ॥३५४॥

जल क्रीडा सुख अति उपजायौ।
रास रंग मन तै नहिं भूलत वहै भेद मन आयौ।
जुवती कर कर जोरि मंडली स्याम नागरी बीच।
चंदन अंग कुमकुमा छूटत जल मिलि तट भइ कीच।
जो सुख स्याम करत जुवती सँग सो सुख त्रिभुवन नाहिं।
सूर स्याम देखत नारिन कौ रीझि रीझि लपटाहिं ॥३५५॥

ठाढे स्याम जमुना तीर।
धन्य पुलिन पवित्र पावन जहाँ गिरिधर धीर।
जुवति बनि बनि भई ठाढी ओर पहिरे चीर।
राधिका सुख स्याम दायक कनक बरन सरीर।
लाल चोली नील डँडिया संग जुवतिनि भीर।
सूर प्रभु छवि निरखि रीझे मगन भयौ मन कीर ॥३५६॥

ललकत स्याम मन ललचात
कहत है घर जाहु सुंदरि मुख न आवति बात।
षट सहस दस गोपकन्या रैनि भोगी रास।
एक छन भइ कोउ न न्यारी सबनि पूरई आस।
बिहँसि सब घर घर पठाई ब्रज गई ब्रजबाल।
सूर प्रभु नँदधाम पहुँचे लख्यौ काहु न ख्याल ॥३५७॥

---

३५५. सूर ... लपटाहिं = श्रीकृष्ण देखते हैं, नारियाँ रीझ-रीझकर परस्पर एक दूसरे से लिपटती है।

३५६. सुख स्याम दायक = श्याम को सुख देनेवाली। कीर = शुकदेव जी।

३५७. ललकत ... ललचात = वियुक्त न होने की लालसा और लालच।

ब्रजवासी सब सोवत पाए।
नंदसुवन मति ऐसी ठानी घर लोगनि उन जाइ जगाए।
उठे प्रात गाथा मुख भाषत आतुर रैनि बिहानी।
ऐंडत अंग जम्हात बदन भरि कहत सबै यह बानी।
जो जैसे सो तैसे लागे अपनै अपनै काज।
सूर स्याम के चरित अगोचर राखी कुल की लाज ।।३५८।।

मान

अब जानी पिय बात तुम्हारी।
मो सौं तुम मुँह की मिलवत हौ भावति है वह प्यारी।
राखे रहत हृदय पर जाकौं धन्य भाग हैं ताके।
ऐसी कहौ लखी नहिं अबलौं बस्य भए हौ याके।
भली करी यह बात जनाई प्रगट दिखाई मोहिं।
सूर स्याम यह प्रान पियारी उर मैं राखी पोहि ।।३५९।।

सुनत स्याम चकित भए बानी।
प्यारी पिय मुख देखि कछुक हँसि कछुक हृदय रिस मानी।
नागरि हँसत हँसी उर छाया तापर अति भहरानी।
अधर कंप रिस भौंह मरोरयौ मनही मन गहरानी।
इकटक चितै रही प्रतिबिबहिं सौति साल जिय जानी।
सूरदास प्रभु तुम बडभागी बडभागिनि जेहिं आनी ।। ३६० ।।

---

३५९. मुँह की मिलवत = मुह देखे की बात करते हो। पोहि = पिरोकर।
३६०. नागरि ... भहरानी = राधा के हँसते ही वह छाया-मूर्ति (जो कृष्ण के हृदय पर थी पर जो वास्तव मे राधा की परिछाहीं मात्र थी) भी हँस दी, यह देखकर राधा क्रुद्ध हो गई। गहरानी = रूठ चली, भारी हो चली। जेहिं आनी = जिसे तुम लाये हो (वह भी बडभागिनी है)।

मान करयौ तिय बिनु अपराधहि।
तनु दाहति बिनु काज आपनौ कहत डरत जिय बाहि।
कहा रही मुख मूँदि भामिनी मोहिं चूक कछु नाहिं।
झझकि रही क्यौ चतुर नागरी देखि आपनी छाहिं।
अजहूँ दूरि करौ रिस उरतें हिरदै ग्यान बिचारौ।
सूर स्याम कहि कहि पचि हारे हठ कीन्हौ जिय भारौ ॥३६१॥

आजु कछू घर कलह भयौ री।
बड़े आजु अनमनी बत्यानी, यह कहि मान ठयौ री।
मासौं कछुक कह्यौ नहिं मोहन सहज पठाई लैन।
कहा पुकार परी हरि आगें चलो न देखौ नैन।
तेरौ नाम लेत हरि आगें कहत सुनाइ सुनाइ।
सूर सुनहु काकौ काकौ गथ तै धौ लयौ छडाइ ॥ ३६२ ॥

ते जु पुकारे हरि पै जाइ।
जिनकी यह सब सौज राधिका तेरै तनु लई छडाइ।
इन्दु कहै हौ बदन बिगोयो, अलकन अलि समुदाइ।
नैननि मृग, बचननि पिक लूटे, बिलपत हरिहिं सुनाइ।
कमल, कीर, केहरि, कपोत, गज, कनक, कदलि, दुख पाइ।
विद्रुम, कुंद, भुजग संग मिलि सरन गए अकुलाइ।
अति अनीति जिय जानि सूर प्रभु पठई मोहिं रिसाइ।
बोली है व्रजनारि बेगि चलि अब उत्तर दै आइ ॥३६३॥

---

३६२. सहज = स्वाभाविक रूप से। देखौ नैन = अपनी आँखो देखो। गथ = पूजी।

३६३ सौज = सामग्री। कमल . . भुजग = यहाँ जो उपमान दिये गये है उनके उपमेय क्रमशः दिये जाते है—नेत्र, नासिका, कटि, कंठ, गति, वर्ण, जंघ, ओष्ठ, दंत और बाहु।

बिराजति राधा रूप निधान।
सुंदरता कौ पुंज प्रगट ही को पटतर त्रिय आन।
सिंदुर सीस माग मुक्तावलि कच कबरी अबिनान।
मनहुँ चंद्रमहिं कोपि हन्यौ रिपु राहु बिषम बलवान।
तरल तिलक ताटंक गड पर झलकत कल बिबि कान।
मानहु ससि सहाय करिबे कौ रन बिरचे द्वै भान।
दीरघ नैन नासिका बेसरि अरुन अधर छबिमान।
खंजन सुक नहिं बिब समिति कौ लज्जित भए अजान।
को कहि सकै उरोजन की छबि कचन मेरु लजान।
श्रीफल सकुचि रहे दुरि कानन सिखर हियौ बिहरान।
रोमावलि त्रिबली छबि छाजति जनु कीन्ही यह ठान।
कृस कटि सबल दड बधन मनौ बिधि दीन्हौ बधान।
अग अग आभूषन की छबि का पर होइ बखान।
सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि बिलसहु स्याम सुजान ।।३६४।।

मनो गिरिवर तै आवति गगा।
राजति अति रमनीक राधिका इहिँ बिधि अधिक अनूपम अगा।
गोर गात दुति बिमल बारि बिधि कटि तट त्रिबली तरल तरगा।
रोमराजि मनौ जमुन मिली अध भँवर परत मानौ भ्रूभगा।

---

३६४ अबिनान = व्यस्त नही, बल्कि बँधी हुई कवरी। चद्रमा मुख का और राहु बँधी हुई कवरी का प्रतीक है। बिबि = दो। द्वैभान = दो सूर्य (कुडल)। समिति = समता। सिखर . . . बिहरान = शिखर का हृदय फट पडा। कृस . . बंधान = पतली कमर को मजबूत रखने के लिए विधि ने त्रिवलीरूपी रस्सी बाँधने को दी है।

३६५. अध = नीचे के प्रदेश मे। भँवर.. भ्रूभगा = भृकुटिभग ही मानो उस गगा की भँवरे है।

भुज बल पुलिन पास मिलि बैठे चारु चक्रवै उरज उतगा ।
मानौ मुख मृदु पानि पंकरुह गुरुगति मनहुँ मराल बिहगा ।
मनि गन भषन रुचिर तीर बर मध्यधार मोतिनमय मगा।
सूरदास मनु चली सुरसरी स्री गोपाल सागर सुख सगा ॥३६५॥

बिहरति मान सर सुकुमारि।
कैसेहू निकसति नही हौ रही करि मनुहारि।
मौन पारि अपार रचि अवगाहि अस जु बारि।
मन गह्यौ पै डरति नाही थकित प्रगट पुकारि ।
सूर स्याम सरोज लोचन डुलन जनु जलचारि।
ग्राह ग्राहक प्रान चाहक फिरति तहँ उर डारि।
चिकुर सैवल निकरि अरुझति सुरझति नहिं निरुवारि ।
नील अचल पत्र पदुमिनि उरज जलज निहारि।
ज्यौ रचि रुचि मान मानिनि मन मराल मुरारि।
सूर आपुन आनिऐ गहि बाह नारि निकारि ॥३६६॥

स्यामा तू अति स्यामहि भावै ।
बैठत उठत चलत गौ चारत तेरियै लीला गावै।
पीतै पीत बसन भूषन सजि पीत धातु अँग लावै।
चद्रानन मुनि मोर चद्रिका माथैं मुकुट बनावै।

---

३६५ पुलिन = तट । मध्यधार = सरस्वती । मोतिनमय मगा = मोतियो से सजी हुई (लाल) माँग। सूरदास सगा = सूरदास कहते हैं—यह राधारूपी गगा सुखपूर्वक श्रीकृष्णरूपी सागर से मानो मिलने जा रही हैं।

३६६ बिहरति सुकुमारि = सुकुमारी राधा मानरूपी जलाशय मे पैठी हुई है। मौन बारि = मौनरूपी दुर्भेद्य पारी (सीमा) बनाकर वह वारि मे गरदन तक पैठी हुई है। अस = कधे । थकित .. पुकारि = मै पुकार कर थक गई। डर डारि = निर्भय होकर। सैवल = सवार । आपुन = आप ही, (हे कृष्ण) ।

अति अनुराग सैन सभ्रम मिलि संग परम सुख पावै ।
बिछुरत तोहिं क्वाहि राधा कहि कुज कुंज प्रति धावै।
तेरौ चित्र लिखै अरु निरखै बासर बिरह गँवावै ।
सूरदास रस रसी रसिक सौ अतर क्यौ करि आवै ॥३६७॥

रहि री मानिनि मान न कीजै।
यह जोबन अजुरी कौ जल है ज्यो गुपाल मागै त्यो दीजै।
छिनु छिनु घटति बढति नहिं रजनी ज्यौ ज्यौ कला चद्र की छीजै।
पूरब पुन्य सुकृत फल तेरो काहे न रूप नैन भरि पीजै।
सौह करति तेरे पाइन की ऐसी जिअनि दसहुं दिन जीजै।
सूर सु जीवन सफल जगत की बैरी बाधि बिबस करि लीजै॥ ३६८

चितयो कमल नैन की कोर।
मनमथ बान दुसह अनियारे निकसे फूटि हिए उहिं ओर।
अति ब्याकुल धुकि धरनि परे ज्यौ तरुन तमाल पवन कैं जोर।
कहुं मुरली कहुँ लकुट मनोहर कहुँ पट कहू चद्रिका मोर।
खन बूडत खन ही खन उछलत बिरह सिधु के परे झकोर।
प्रेम सलिल भीज्यौ पीरौ पट फट्यौ निचोरत अंचल छोर।
फुरै न बचन नैन नहिं उघरत मानहुँ कमल भए बिनु भोर।
सूर सु दरस सुधारस सीचहु मेटहु मुरछा नदकिसोर॥३६९॥

---

३६७ रस रसी . सौ = जिस रसिक के रस में तू रसी हुई है, उससे अंतर क्यो करती है ?

३६८ छिनु रजनी = रात क्षण-क्षण घटती ही है (बढती नहीं)।

३६९. फूटि = छेदकर। उहि ओर = दूसरी तरफ। पीरो पट = पीताबर। अचल = पीले अचल का छोर निचोडते हुए (कठोरता से काम लेते ही) फट गया (कृष्ण के प्रति सहानुभूति)।

यह रितु रूसिबे की नाहिं।
बरषत मेघ मेदिनी कै हित प्रीतम हरषि मिलाहिं।
जे बेली ग्रीषम रितु डाही ते तरुवर लपटाहिं।
जे जल बिन सरिता ते पूरन मिलन समुद्रहि जाहिं।
जोबन धन है दिवस चारि कौ ज्यौं बदरी की छाहिं।
मैं दंपति रस रीति कही है समुझि चतुर मन माहिं।
सूरदास उठि चलहु राधिका सँग दूती पिय पाहिं॥३७०॥

प्यारी अस परयो दै री।
मेरी सीख सुनि रसिक राधिका मन मैं न्याउ चितै री।
आप आपनी तिथिवार दुहि अँचवत अमर सबै री।
हर सुरस सुर सेष समुझि जिय क्यों प्रभु पान करै री।
वह जूठो ससि जानि बदन बिधु रच्यो बिरंचि इहै री।
सौंप्यो सुपत बिचारि स्याम हित सुतै रही लहिलै री।
जा की जहा प्रतीति सूर सो सरबस तहाँ सचै री।
मधु सुधानिधि अरपि अबहिं उठि बिधु पुनि नहीं पचै री॥३७१॥

मान-निवारण

आजु राधिका रूप अन्हायो।
देखत बनै कहत नहिं आवै मुख छबि उपमा अंत न पायौ।
अनुपम अलक तिलक केसरि कौ ता बिच मेदुर बिंदु बनायौ।
मानो पून्यौ चंद खेत चढ़ि लरि सुरभान सुो घायल आयौ।

३७० बदरी की छाहि = बादल की छाया।
३७१. तिथिवाई = तिथि के अनुसार। सुपत = प्रतिष्ठित जानकर तुझे वह चंद्रमा (रूपी मुख) सौंपा था। सचै = संचित करता है। नहीं पचै री = हजम नहीं होगा (मान लाभकर सिद्ध न होगा।)
३७२. सुरभान = स्वर्भानु; राहु।

कानन की तारी अति राजति मनहुँ मदन रथ चक्र चढ़ायो।
मानहुँ नाग जीति मनि माथे भरि सोहाग कौ छत्र तनायौ।
बकति भौंह चपल अनि लोचन बेसरि रस मुकताहल छायौ।
मानो मृगनि अमी भाजन भरि पिवत न बन्यौ दुहू डरकायौ।
अधर दसन रसना कोकिल ज्यौ तिमिर जीति बिच चिबुक लगायौ।
मनहुँ देखि रवि कमल प्रकासत तापर भृंगी सावक आयो।
कचुकि स्याम सुगंध सँवारी चौकी पर नग बन्यौ रनायौ।
मानो दीपक उदित भवन में तिमिर सकुचि सरनागत आयो।
भूषन भुजा ललित लटकन बर मानहुँ मिलि अलिपुंज सुहायौ।
रतेहुँ पर रूरी सूरज प्रभ लै दूनी दरपन दिखरायौ ॥३७२॥

मोहन मोहिनि अंग सिंगारत।
बेनी ललित ललित कर गूथत सुंदर माँग सँवारत।
सीसफूल धरि पाटी पाछन फूँदनि झँवा निहारत।
बदन बिंदु, जराइ की बेंदी तापर बनै सुधारत।
तरिवन स्रवन नैन दोउ आँजत नासा बेसरि साजत।
बीरी मुख भरि चिबुक डिठौना निरखि कपोलनि लाजत।
नख सिख सजत सिंगार भाव सौं जावक चरननि सोहत।
सूर स्याम प्रिय अंग सँवारत निरखि आपु मन मोहत ॥३७३॥

हिंडोला

झूलत स्याम स्यामा संग।
निरखि दंपति अंग सोभा लजित कोटि अनंग।
मंद त्रिबिधि बयारि सीतल अंग अंग सुगंध।
मचत उडत सुबास सँग मन रहे मधुकर बंध।

---

३७३ फूँदनि झँवा = फुँदनों के झब्बे या गुच्छे को। जराइ की = जडाऊ, रत्नजटित। बीरी = पान।

३७४ मचत = पेंग मारते हुए सुगंधि उडती है जिस पर भौंरे बिंध रहे हैं।

तैसियै जमुना सुभग जहँ रच्यौ रंग हिंडोल।
तैसियै ब्रजबधू बनि हरि चितै लोचन कोर।
तैसोई बृंदा बिपिन घन कुंज द्वार बिहार।
बिपुल गोपी बिपुल बन गृह रवन नंदकुमार॥ ३७४॥

हिंडोरना माई झूलत हैं गोपाल।
संग राधा परम सुंदरी चहूँधा ब्रजबाल।
सुभग जमुना पुलिन मोहन रच्यौ रुचिर हिंडोर।
लाल डाँडी फटिक पटुली मनिन मरुवा घोर।
भौंर मयारिनि नील मरकत खचे पाति अपार।
सरल कंचन खंभ सुंदर रच्यौ काम सुतार।
भाँति भाँतिनि पहिरि सारी तरुनि नवसत अंग।
सुंदरी बृषभानु तनया नैन चपल कुरंग।
हँसति पिय सँग लेति झूमक लखति स्यामल गात।
मनौ घन मैं दामिनी छबि अंग मैं लपिटात।
कबहुँ पुलकति कबहुँ डरपति हँसत निरखति बारि।
कबहुँ देतिं झुलाइ गोपी गावहीं नवनारि।
सूर प्रभु के संग कौ सुख बरनि का पै जाइ।
अमर बरषत सुमन अंबर बिबिध अस्तुति गाइ॥ ३७५॥

हिंडोरे झूलत स्यामा स्याम।
ब्रज जुवती मंडली चहूँधा निरखत बिथकित काम।
कोउ गावति कोउ हरषि झुलावति कोउ पुरवति मन साध।
कोउ सँग मचति कहति कोउ मचिहौ उपज्यौ रूप अगाध।

---

१७५ डाँडी = हिंडोले के डंडे। पटुली = हिंडोले का वह तख्ता जिस पर खड़े होते हैं। मरुवा = वह लकड़ी जिसमें हिंडोला लटकाते हैं। भौंर = हिंडोले की धरन। मयारिनि = हिंडोले का ऊपरी डंडा। सुतार = बढ़ई। झूमक = पेंग।

१७६ मचति = झूलती है।

कोउ डरपनि हा हा करि बिनवति प्यारी अकम लाइ
गाढ़ें गहति पियहिं अपने कर पुलकित अंग डराइ ।
अब जनि मचौ पाइ लागति हौ मोको देहु उतारि ।
यह सुनि हँसत मचत अति गिरिधर डरति देखि अति नारि ।
प्यारी टेरि कहति ललिता सौ मेरी सौ गहि राखि ।
सूर हँसति ललिता चंद्रावलि कहा कहति पियभाषि ।। ३७६ ।।

वंशी के प्रति

अधर रस मुरली सौतिनि लागी ।
जा रस कौं षठरितु तप कीन्हौ सो रस पिवति सभागी ।
कहाँ रही कहँ तैं ह्याँ आई कौने याहि बोलाई ।
सूरदास प्रभु हम पर ताको कीन्हे सवति बजाई ।। ३७७।।

मुरली मोहिनी भई ।
करी जु करनि देव दनुजनि प्रति वह बिधि फेरि ठई ।
वह पयनिधि इन ब्रज सागर मथि पाइ पियूष नई ।
सिंधु सुधा हरि बदन इंदु की इहिं छल छीनि लई ।
आपु अँचै अँचवाइ सप्त सुर कीन्हे दिग बिजई ।
एकहि पुट उत अमृत सूर इत मदिरा मदन मई ।।३७८।।

जब जब मुरली के मुख लागत ।
तब तब स्याम कमल दल लोचन नख सिख तै रस पागत ।

---

३७७. सौतिनि = सौत; सपत्नी । बजाई = खुलेआम, गा-बजाकर ।
३७८ सिंधु ... लई = उसने सिंधु की सुधा छल से छीनी थी इसने श्रीकृष्ण के मुख की सुधा छीनी है । आपु . . .बिजई = आप पीकर और सातो स्वरो को पिलाकर उन्हे दिग्विजयी बना दिया । एकहि . मई = एक ही अंजली मे उधर अमृत बाँटती है और इधर हमे कामनारूपी मदिरा पिलाती है ।

बात न कहत रहत टेढे ह्वाइ बाहँ अलिंगन मानत।
भृगुटी अधर बुक नासापुट सूधौ चितवन त्यागत।
पल इक मांहि पलटि सो लीजत प्रगटत प्रीति अनागत।
सूरदास स्वामी बसीबस मुरछि निमेष न जागत ॥३७९॥

ज्यौ ज्यौ मुरलिहिं महत दियौ।
त्यौ त्यौ निदरि स्याम कोमल तन बदन पियूष पियौ।
रोकै रहति पानि पल्लव पुट होत न कछू बियौ।
बैठति अधरनि पीठ परमरुचि सकुचन नाहिं हियौ।
जान्यौ जग रतिपति सिव जारयौ सो इहिं सूर जियौ।
बिधि मरजाद मेटि इन जो जो रुचि आई सो कियौ ॥३८०॥

ग्वालिनी तुम कत उरहन दहु।
पूछहु जाइ स्यामसुदर कौ जिहिं बिधि जुरयौ सनेहु।
बारे ही तैं भई बिरत चित तज्यौ गाउँ गुनि गेहु।
एकै चरन रही ह्वै ठाढ़ी हिम ग्रीषम रितु मेहु।
तज्यौ मूल साखा सौ पत्रनि सोच सुखानी दहु।
अगिनि सुलाकत मुरयौ न अँग मन बिकट बनावत बेहु।
बकती कहा बासुरी कहि कहि करि करि तामस नेहु।
सूर स्याम इहि भांति रिझै कै तुमहु अधर रस लेहु ॥३८१॥

---

३७९ अनागत = अपूर्व।

३८० महत = प्रतिष्ठा। अधरनि पीठ = अधररूपी आसन पर। जियौ = पुनरुज्जीवित कर लिया है।

३८१ जुरयौ = जुड़ा है। बिरत चित = विरक्त मनवाली। गुनि गेहु = सोच समझकर घर गाँव छोड़ा। मेहु = वर्षा। सौं = सहित। अगिनि सुलाकत = तपा शलाका चुभोते हुए। बिकट = भयानक। बेह = छेद। तामस नेह = क्रोध और नेहा करके।

बसत

स्री बृंदाबन खेलहि गुपाल।
सज बनि ठनि आईं ब्रज की बाल।
[illegible] बल्ली सुदर नव तमाल
नव कमल महा नव नव रसाल।
अपनै कर सुदर रचित माल।
अवलबित नागर नदलाल।
नव केसरि नव अरगजा घोरि।
छिरकनिँ नागर कहँ नव किसोरि।
[illegible] गोपबधू गजही मग।
गज मोतिनि सुदर ललित मग।
गोपीनि ग्वाल सुदर सुदेस।
छिरकत सुगध भए ललित भेस।
नदनंदन के भ्रू बिलास।
आनदित गावत सूरदास॥१८२॥

सुदर बर सँग ललना बिहरति बसत सरस रितु आई।
लै लै छरी सु कुँवरि राधिका कमल नैन पै धाई।
द्वादस बन रतनारे देखियत चहुँ दिसि टेसू फूले।
मौरे अँबुआ अरु द्रुम बेली मधुकर परिमल भूले।
सरिता सीतल बहति मद गति रबि उत्तर दिसि आयौ।
प्रेम उमगि कोकिला बोली बिरहिनि बिरह जगायौ।
ताल मृदग बीन बासुरी डफ गावत मधुरी बानी।
देतिँ परसपर गारि मुदित ह्वै तरुनी बाल सयानी।

---

१८२ अवलबित = लटक रही है। भ्रू बिलास = भौहो का मटकना।
१८३ रतनारे = लाल (यौवन का सूचक)। मौरे = मजरी लग गई है।

सुरपुर नरपुर नागलोक जल थल क्रीडा रस पावै।
प्रथम बसत पचमी लीला सूरदास गुन गावै ॥ २८३ ॥

होली

खेलत फाग ग्वालनि सग।
एक गावत एक नाचत एक करत बहु रंग।
बीन, मुरज, उपंग, मुरली, झाझ, झालरि ताल।
पढत होरी बोलि गारी निरखि कै ब्रजबाल।
कनक कलसनि घोरि केसरि कर लिए ब्रजनारि।
जबहिं आवत देख तरुनिनि भजत दै किलकारि।
दुरि रही इक खोरि ललिता उत तै आवत स्याम।
धरे भरि अँकवारि औचक आइ कै ब्रजबाम।
बहुत ढीठौ दै रहे हौ जानिबी अब आज।
राधिका दुरि हँसति ठाढी निरखि पिय मुख लाज।
लई काहू मुरलि कर तै काउ गह्यौ पट पीत।
गूथि बेनी माग पारे नैन आजि अनीति।
गए कर तै झटकि मोहन नारि सब पछिताति।
सीस धुनि कर मीजि बोलति भली लै गए भाति।
दाव हम नहि लैन पायौ बसन लेती लाल।
सूर प्रभु कहँ जाउगे अब हम परी इहिं ख्याल ॥ २८४ ॥

स्यामा स्याम खेलत दोउ होरी। फाग मच्यौ अति ब्रज की खोरी।
इतहि बनी बृषभानु किसोरी। सँग ललिता चद्रावलि जोरी।
ब्रजजुवती सँग राजति भोरी। बनि सिँगार स्री राधा गोरी।
उतहिँ स्याम हलधर दोउ जोरी। वारौं कोटि काम छबि थोरी।

---

२८३. सुरपुर नरपुर नागलोक = पृथ्वी, आकाश और पाताल।
२८४ मुरज = मृदंग ।

ग्वार अबीरनि की लिए झोरी। सुरँग गुलाल अरगजा झोरी।
गावतिं सबै मधुर सुर गोरी। तान लेतिं दै दै झकझोरी।
राधा सहित चंद्रावलि दौरी। औचक लीन्ही पीत पिछौरी।
देखत ही लै गई अँजोरी। डारि गई सिर स्याम ठगौरी।
ग्वाल देत होरी की गारी। बैर कियौ हम सौं तुम भारी।
हँसति परसपर जोबन बोरी। लै आई हरि पीत पिछौरी।
ध्यान करति मन मुरली कौरी। अधरनि तै नहिँ टारत जो री।
भली करी सब हम तुम सौ री। सावधान अब होहु कहयौ री।
स्याम चितै राधा मुख ओरी। नैन चकोर चंद्र दरस्यौ री।
पिय कौ पिय मोहिनी लगाइ। इहि अंतर गोपी हँसि धाइ।
गह्यौ हरषि भुज ललिता जाइ। गई स्याम की सब चतुराइ।
मनमाने सब करति बडाइ। राधा मोहन गाठि जोराइ।
करत सबै रुचि की पहुनाइ। नंद महर कौ गारी गाइ।
फगुवा हमकौ देहु दिवाइ। पँचरँग सारी बहुत मँगाइ।
लीन्ही जो जाकै मन आइ। तुरत सबै जुवती पहिराइ।
खेलत फाग रह्यौ रस भारी। बृद्ध किसोर बाल अरु नारी।
अति श्रम जानि गए जल तीरा। ग्वाल ग्वालि हलधर हरि बीरा।
परम पुनीत जमुन जल रासी। क्रीडत जहा ब्रह्म अबिनासी।
धन्य धन्य सब ब्रज के बासी। बिहरत है हरि सँग करि हासी।
जल क्रीडा तरुनिनि मिलि कीन्हौ। ब्रज नर नारिनि कौ सुख दीन्हौ।
करि अस्नान चले ब्रजधाम। करे सबनि के पूरन काम।
जो सुख नंद जसोदा पायौ। सो सुख नाही प्रगटि बतायो।
सुर बनिता यह मंधि बिचारैं। कैसे हरि सँग हमहूँ बिहारैं।
धन्य धन्य ये ब्रज की बाला। धन्य धन्य गोकुल के ग्वाला।
सूर स्याम जन के सुखदायक। भुव प्रगटे हरि हलधर नायक ॥३८५॥

---

३८५ अँजोरी = छीनकर । पहुनाइ = स्वागत-सत्कार, आतिथ्य (विनोद मे) । हलधर हरि बीरा = बलराम और कृष्ण दोनों भाई। मंधि = मन्त्रणा।

जदुपति जल क्रीडत जुवति संग। सागर सकुचत तजि तरंग।
षोडस सहस अष्ट दस नारि। तिन में अति सोभित स्री मुरारि।
उडगन समेत ससि सिंधु बारि। मनु पुनि आयौ चित हित बिचारि।
मृगमद मलयज केसरि कपूर। कुमकुमा कलित छत अगर चूर।
जल ताकि परसपर छपत दूर। मनु धनुष निपुन संग्राम सूर।
चलत चारु कल बलय चीर। जनु जलद बूंद छोभित समीर।
बदन निकट कच चुवत नीर। मनु मधुप निकर प्यावत न धीर।
जहँ नारदादि मुनि करत गान। जग पूरित हरि जस सुर बितान।
सुर सुमन सघन बरषत बिमान। जै सूरज प्रभु सब सुख निधान ।।३८६।

स्री गोकुल नाथ विराजत डोल।
संग लिए बृषभानु नंदिनी पहिरे नील निचोल।
कंचन खचित लाल मनि मोती हीरा जटित अमोल।
झुलवहिँ जूथ मिले ब्रजसुंदरि हरषित करहिँ कलोल।
चलनिँ हँसतिँ परस्पर गावतिँ बोलतिँ मीठे बोल।
सूरदास स्वामी पिय प्यारी झूलत हैं झकझोल ।। ३८७ ।।

अक्रूर का व्रज-आगमन

कंस नृप अक्रूर ब्रज पठाए।
गए आगे लैन नंद उपनंद मिलि स्याम बलराम उन हृदय लाए।
उतरि स्यंदन मिल्यौ देखि हरष्यौ हियौ सोच मन यह भयौ कहा आयौ।
राज के काज कौ नाम अक्रूर यह किधौ कर लैन कौ नृप पठायौ।

---

३८६. सागर ... समुद्र सकुचित होता है। मनु पुनि ... बिचारि = पुराना प्रेम स्मरण करके चन्द्रमा ताराओ के सहित मानो दुबारा आया है। चीर = नील वस्त्र। छोभित समीर = वायु का झोका पाकर।
३८७ डोल = पुष्पों से आच्छादित हिंडोला। निचोल = वस्त्र; सारी।
३८८ स्यंदन = रथ।

कुसल तेहिं बूझि लै गए ब्रज निज धाम स्याम बलराम मिलि गए ताकौं।
चरन पखराइ कै सुभग आसन दियौ बिबिध भोजन तुरत दियौ ताकौं।
कियौ अक्रूर भोजन दुहुनि संग लै नर नारि ब्रज लोग सबै देखै।
मनौ आए मग देखि ऐसे रंग मनहिं मन परसपर करत मेषै।
सारि जवनार अँचवन कै भए सुद्ध दियौ तंबोर नँद हरष आगे।
सेज बैठारि अक्रूर सौं जोरि कर कृपा करी कंत तब कहन लागे।
स्याम बलराम कौं कंस बोले हेत सौं नंद लै सुतनि हम पास आवै।
सूर प्रभु दरस की साध अतिही करत आजु ही कह्यौ जनि गहरु लावै॥३८८॥

चलत जानि चितवनि ब्रज जुवती मानहुँ लिखी चितेरे।
जहाँ सु तहाँ इकटक मग जोवत फिरत न लोचन फेरे।
बिसरि गई गति भाँति देह की सुनत न स्रवननि टेरे।
मिलि जु गए मानौ पय पानी निबरत नहीं निबेरे।
लागे संग मतंग मत्त ज्यौं घिरत न कैसेंहु घेरे।
सूर प्रेम अकुस आसा जिय दै नहिं इत उत हेरे॥३८९॥

अनल तें बिरह अगिनि अति ताती।
माधव चलन चहत मधुबन कौं सुनें तपै अति छाती।
न्याइहि नागरि नारि बिरह बस जरत दिया ज्यौं बाती।
जे जरि मरीं प्रगट पावक परि ते त्रिय अधिक सुहाती।
डारतिं नीर नैन भरि भरि सब ब्याकुलता मद माती।
सूर ब्यथा सोई पै जानै स्याम सुभग रँग राती॥३९०॥

---

३८८ मेषै = कटाक्ष, फब्ती या व्यंग्य। तंबोर = पान।

३८९ गति-भाँति = अस्तित्व। निबरत = पृथक् होना। सूर ... हेरे = सूरदास कहते हैं कि प्रेम और आशारूपी अकुश के द्वारा श्रीकृष्ण ने गोपियों के मतंग (हाथी) रूपी हृदयों को थामा नहीं। उनकी ओर देखा ही नहीं।

३९० न्याइहि = स्वभावत ही, उचित कारणों से ही। सुहाती = सौभाग्यवती, सुखी।

स्याम गएँ सखि प्रान रहेंगे।
अरस परस ज्यौ बातै कहियत तैसैं बहुरि कहैंगे।
इंदु बदन खग नैन हमारे जानति और चहैंगे ।
बासर निसि कहुँ होत न न्यारे बिछुरत हृदयँ सहैंगे।
एक कहौ तुम आगे बानी स्याम न जाहिं, रहैंगे।
सूरदास प्रभु जसुमति कौ तजि मथुरा कहा लहैंगे ॥३९१॥

मेरे कमलनैन प्रान ते प्यारे।
इनकौ कौन मधुपुरी बैठत राम कृष्न दोऊ जन बारे।
जसुदा कहति सुनहु सुफलकसुत मै पयपान जतन करि पारे।
ए कह जानहिं सभा राज की ए गुरुजन बिप्रहुँ न जुहारे।
मथुरा असुर समूह बसत है कर कृपान जोधा हत्यारे।
सूरदास स्वामी ये लरिका इन कब देखे मल्ल अखारे॥ ३९२॥

मेरौ माइ निधनी कौ धन माधौ॥
बारबार निरखि सुख मानति तजति नही पल आधौ ।
छिन-छिन परसत अंग मिलावत प्रेम प्रगट ह्वै लाधौ।
निसि दिन चद्र चकोर क्या छबि जनु मिटै न दरसन साधौ।
करि है कहा अक्रूर हमारौ दैहै प्रान अगाधौ।
सूर स्यामघन हौ नहिं पठऊ अबहि कंस किन बाधौ॥३९३॥

---

३९१. जानति और चहैंगे = हम जानती है, क्या किसी और को देखेंगे (देखकर जीवित रहेंगे)।

३९२. इनकौ... बैठत = मथुरा मे इनका कौन बैठा हुआ है। पारे = पालन किया है।

३९३. लाधौ = प्राप्त किया, लाभ पाया। अगाधौ = अगाध गर्त मे; गहरे समुद्र या गड्ढे मे (दुःख की सूचना)।

जसोदा बार बार यौ भाषै।
है ब्रज मै कोउ हितू हमारौ चलत गोपालहिँ राखै।
कहा काज मेरे छगन मगन कौ नृप मधुपुरी बुलायौ।
सुफलकसुत मेरे प्रान हतन कौ काल रूप ह्वै आयो।
बरु ए गोदन हरौ कस सब मोहि बदि लै मेलौ।
इतनै ही सुख कमलनैन मेरी अँखियनि आगै खेलौ।
बासर बदन बिलोकत जीवौ निसि निज अकम लाऊं।
तेहिँ बिछुरत जौ जियौ करमबस तौ हँसि काहि बुलाऊ!
कमलनैन गुन टेरत टरत अधर बदन कुम्हिलानी।
सूर कहाँ लगि प्रगट जनाऊ दुखित नदजू की रानी॥ ३९४॥

मोहन इतनौ मोहि चित धरिऐ।
जननी दुखित जानि कै कबहूं मथुरा गमन न करिऐ।
यह अक्रूर क्रूर कृत रचि कै तुमहिँ लैन है आयौ।
तिरछे भये कर्मकृत पहिले बिधि यह ठाट बनायौ।
बार बार जननी कहि मो सौ माखन मागत जौन।
सूर तिनहिँ लैबै कौ आए करिहौ सूनौ भौन॥ ३९५॥

सुने नँदलाल मधुपुरी जात।
सकुचति कहि न सकति काहू सौ गुप्त हृदय की बात।
सकति बचन अनागत कोऊ कहि जु गई अधरात।
नीद न परै घटै नहिँ रजनी कब उठि देखौ प्रात।
नँदनदन तौ ऐसै लागे ज्यौ जल पुरइन पात।
सूरदास सँग तै बिछुरत है कब ऐहै कुसलात॥ ३९६॥

---

३९४. छगन मगन = प्यार से बच्चों के प्रति किया गया संबोधन।
३९५. तिरछे = टेढे, विपरीत।

मोहन नेकु बदन तन हेरौ ।
राखौ मोहिं नात जननी कौ मदन गुपाल लाल मुख फेरौ ।
पाछे चढौ बिमान मनोहर बहुरौ जदुपति होत अँधेरौ ।
बिछुरन भेंट देहु ठाढे ह्वै निरखौं घोष जन्म कौ खेरौ ।
माधौ सखा स्याम इन कहि कहि अपने गाइ ग्वाल सब घेरौ ।
गये न प्रान सूर तिहिं अवसर नंद जतनकरि रहे घनेरौ ॥३९७॥

जबहीं रथ अक्रूर चढ़े ।
तब रसना हरि नाम भाषि कै लोचन नीर बढ़े ।
महरि पुत्र कहि सोर लगायौ तरु ज्यौं धरनि लुठाइ ।
देखति नारि चित्र सी ठाढ़ी चितए कुँवर कन्हाइ ।
इतनेहि मैं सुख दियौ सबनि कौ मिलिहैं अवधि बिताइ ।
तनक हँसे मन दै जुवतिन कौ निठुर ठगौरी लाइ ।
बोलति नहीं रही सब ठाढ़ी स्याम ठगी ब्रजनारि ।
सूर तुरत मधुबन पग धारे धरनी के हितकारि ॥३९८॥

बिछुरे स्री ब्रजराज आज तौ नैननि की परतीति गई ।
उठि न गए हरि संग तबहि तै ह्वै न गए सखि स्याममई ।
रूप रसिक लालची कहावत सो करनी कछुवै न भई ।
साँच क्रूर कुटिल ये लोचन बृथा मीन छबि छीनि लई ।
अब काहे जल मोचत सोचत समय गए तै सूल नई ।
सूरदास याही तै जड़ भए इन पलकनि हठि दगा दई ॥३९९॥

---

३९७. नात = सम्बन्ध । बिछुरन भेंट = बिदाई की भेंट । नंद घनेरौ = कठिन यत्न करके नंद अपने प्राण रोक रहे हैं ।

३९८. महरि = यशोदा । लुठाइ = लोट रही है ।

३९९. परतीति = प्रतिष्ठा । क्रूर = तीव्र । याही तै जड़ भए = इसीलिए ये जड़ (अचल) हो गये (कृष्ण के साथ जा नहीं सके) । पलकनि... दई = पलकों ने धोखा दिया (वे मुँद गईं) ।

तब न बिचारी री यह बात।
चलत न फेंट गही मोहन की अब ठाढ़ी पछितात।
निरखि निरखि मुख रही मौन ह्वै थकित भई पलपात।
जब रथ भयौ अदृष्ट अगोचर लोचन अति अकुलात।
सबै अजान भई उहिं अवसर धिग सु जसोमति मात।
सूरदास स्वामी के बिछुरे कौड़ी भरि न बिकात ॥४००॥

श्रीकृष्ण का मथुरा पहुँचना

स्री मथुरा ऐसी आजु बनी।
देखहु हरि जैसे पति आगम सजति सिंगार धनी।
मानहुँ कोट कसी कटि किंकिनि उपबन बसन सुरंग।
भूषन बसन बिचित्र देखियत सोभित सुंदर अंग।
सुनत स्रवन घरियार घोर धुनि पाइनि नूपुर बाजत।
अति सभ्रम अचल चचल गति धामनि ध्वजा बिराजत।
ऊंच अटनि पर छतरीनि की छबि सीसनि मानौ फूली।
कनक कलस कुच प्रकट देखियत आनँद कंचुकि भूली।
बिद्रुम फटिक पची परदा छबि जाल रंध्र की रेख।
मनहुँ तुम्हारे दरसन कारन भूले नैन निमेष।
चित दै अवलोकहु नँदनंदन पुरी परम रुचि रूप।
सूरदास प्रभु कंस मारि कै होहु इहां के भूप ॥४०१॥

रथ पर देखि हरि बलराम।
निरखि कोमल चारु मूरति हृदय मुकता दाम।

---

४००. पलपात = पलकों का गिरना।
४०१ धनी = स्त्री। कोट = किला (जो सोने का था)। सीसनि मानौ फूली = मानो शीशफूल (सिर का भूषणविशेष) हो।

मुकुट कुंडल पीत पट छबि अनुज भ्राता स्याम।
रोहिनी सुत एक कुंडल गौर तनु सुख धाम।
जननि कैसे धरयौ धीरज कहतिं सब पुरबाम।
बोलि पठए कंस इनकौ करै धौं कह काम।
जोरि कर बिधि सौं मनावतिं आसिसै दै नाम।
न्हात बार न खसै इनकौ कुसल पहुँचे धाम।
कंस कौ निरबस ह्वैहै करत इन पर ताम।
सूर प्रभु नँद सुवन दोऊ हंस बाल उपाम ॥४०२॥

हँसत हँसत स्याम प्रबल कुबलया मारयौ।
तुरत दांत लिए उपारि कंधनि पै चले धारि निरखत नर नारि
मुदित चकित गज सँहारयौ।
अतिही कोमल अजान सुनत नृपति जिय सकान तनु बिनु ज्यौ
भयौ प्रान मल्लनि पै आए।
देखत ही संकि गए काल गुनि बिहाल भए कंस डरनि
घेरि लए दोउ मन मुसकाए।
असुर बीर चहू पास जिनकै बस भुव अकास मल्लनि पै करि न
गास नास जिय बिचारे।
सबै कहत भिरह स्याम सुनत रहत सदा नाम हारि जीति
घर ही की कौन काहि मारे।
हँसि बोले स्याम राम कहा सुनत रहे नाम खेलन कौ हमहि काम
बालक सँग डोल।
सूर नंद के कुमार यह है राजस बिचार कहा कहत बार बार
प्रभु ऐसे बोले ॥४०३॥

---

४०२. न्हात बार न खसै = स्नान करते हुए भी एक बाल न गिरे, कुछ भी क्षति न पहुँचे। उपाम = समान।

४०३. सकान = डरा। हारि जीति घर ही की = घर के भीतर ही हार जीत मना लेते थे।

कहतिँ पुर नारि यह मन हमारें।
रजक मारयौ धनुष तोरि द्वै खड किए हत्यौ गजराज त्यौं इनहुँ मारें।
तृषित अति नारि सबै मल्ल ज्यौ ज्यौं कहैं लरत नहिं स्याम हम सग काहे।
परसपर मत करत मारि डारौ इनहिं लखत ये चरित दुहुँ निमिष न चाहे।
कहा ह्वैहै दई होन चाहत कहा अबहिं मारत दुहुनि हमहि आगे।
सूर कर जोरि अंचल छोरि बिनवै बचैं ए आजु बिधि इहै मागे ॥४०४॥

भिर्यौ चानूर सौ नद सुत बाँधि कटि पीतपट फेट रनरग राजे।
द्विरद दंत कर कलित भेष नटवर ललित मल्ल उर सल्लि सल ताल बाजे।
पीन भुज लीन जे लच्छि रंजित हृदय नीलघन सीत तनु तुंग छाती।
देखि रह्यौ भेष अति प्रेम नर नारि सब बदतिँ तजि भीर रति रीति राती।
मत्त मातग बल अंग दभोलि दल काछनी लाल गजमाल सोहै।
कमल दल नैन मृदु बैन बदित बदन देखि सुरलोक नरलोक मोहै।
बाहु सौ बाहु उर जानु सौ जानु की चरन सौ चरन धरि प्रगट पेलैं।
चमक दै घूघरनि भीर भय बधु जन सुभट पद पानि धरि धरनि मेलैं।
चित्त सौ चित्त मनिबध मनिबध सौं दृष्टि सौ दृष्टि धरि सिर चपैया।
जानि रिपुहानि तजि कानि जदुराज की बबकि उठि फूलि बसुदेव रैया।
एसैंही राम अभिराम सुरसेष बपु गह्यौ मुष्टिक महा मल्ल मारयौ।
तोरि निज जनक डर केस गहि कंसि नर सूर हरि मच तैं दुष्ट डार्यौ ॥४०५॥

कंस-बध

देखि नृप तमकि हरि चमकि तहांई गए दमकि लीन्हौ गिरह बाज जैसे।
धमकि मारयौ घाउ गुमकि हिरदयँ रह्यौ भमकि गहि केस लै चले ऐसे।

---

४०४. दुहुँ निमिष न चाहे = दोनो पलके मुँदना नहीं चाहती।
४०५. दंभोलि = वज्र।
४०६. गुमकि = भीतरी चोट लगना।

ठेलि हलधर दियौ झेलि तब हरि लियौ महल कैं तरे धरनी गिरायौ।
अमर जयधुनि भई धाक त्रिभुवन गई कस मार्‌यौ निदरि देवरायौ।
धन्य बानी गगन धरनि पाताल धनि धन्य हौ धन्य बसुदेव ताता।
धन्य अवतार सुर धरनि उपकार कौ सूर प्रभु धन्य बलराम भ्राता ॥४०६॥

जय जय धुनि तिहुँलोक भई।
मार्‌यौ कस धरनि उद्धार्‌यौ ओक ओक आनदमई।
रजक मारि कोदड बिभज्यौ खेल करत गज प्रान लियौ।
मलन पछारि असुर सहारे तुरत सबनि सुरलोक दियौ।
पुर नर नारिनि कौ सुख दीन्हौ जो जैसौ फल सोइ लह्यौ।
सूर धन्य जदुबस उजागर धन्य धन्य धुनि घमरि रह्यौ ॥४०७॥

गोपिका-विरह

किधौ घन गरजत नहि उन दसनि?
किधौं वहि इन्द्र हठिहि हरि बरज्यौ, दादुर खाए शेषनि।
किधौ वहि देस बकन मग छाँड्यौ, धर बूड़ति न प्रवेसनि।
किधौ वहि देस मोर, चातक, पिक बधिकन बधे विशषनि।
किधौ वहि देस बाल नहिं झूलति गावति गीत सहेसनि।
पथिक न चलत सूर के प्रभु पै जासौ कहौ सँदेसनि ॥४०८॥

बरु ये बदरा बरषन आए।
अपनी अवधि जानि, नँद-नन्दन! गरजि गगन घन छाए।
सुनियत हैं सुरलोक बसत हैं, सेवक सदा पराए।
चातक कुल की पीर जानिकै जहँ तहँ तें उठि धाए।

---

४०६. झेलि = रोक लेना।
४०७ ओक ओक = घर घर।
४०८ शेषनि = साँपो ने। धर = धरा, पृथ्वी। सहेसनि = महर्ष।
४०९ पराए = दूसरे के अर्थात् इन्द्र के।

द्रुम किए हरित, हरषि मिली बल्ली, दादुर मृतक जिवाए।
छाए निविड नीर तृण जहँ तहँ पंछिन हू प्रति भाए।
समझति नहिं सखि! चूक आपनी बहुतै दिन हरि लाए।
सूरदास स्वामी करुनामय मधुबन बसि बिसराए ॥४०९॥

हमारे माई! मोरउ बैर परे।
घन गरजै बरजै नहिं मानत त्यों त्यों रटत खरे।
करि एक ठौर बीनि इनके पँख मोहन सीस धरे।
याही तें हम ही को मारत, हरि ही ढीठ करे।
कह जानिए कौन गुन, सखि री! हम सों रहत अरे।
सूरदास परदेस बसत हरि, ये बन तें न टरे ॥४१०॥

सखी री! हरिहि दोष जनि देहु।
जातैं इते मान दुख पैयत हमरेहि कपट सनेहु।
विद्यमान अपने इन नैनन्ह सूनो देखति गेहु।
तदपि सखी ब्रजनाथ विरह उर भिदि न होत बड़ बेहु।
कहि कहि कथा पुरातन, ऊधो! अब तुम अन्त न लेहु।
सूरदास तन तो यों ह्वैहै ज्यों फिरि फागुन मेहु ॥४११॥

दुखियत कालिंदी अति कारी।
कहियौ, पथिक! जाय हरि सो ज्यो भई बिरह-जुर-जारी।
मनो पलिका पै परी धरनि धँसि तरँग तलफ तनु भारी।
तटबारू उपचार-चूर मनो, स्वेद प्रबाह पनारी।

---

४११ बेहु = बेध, छेद। फागुन मेहु = जल-रहित, जीवन-रहित।
४१२ जुर = ज्वर, ताप। पलिका = पलग। तरँग .... भारी = तरंग उठना मानो शरीर का तडफडाना है। उपचार-चूर = औषध का चूर्ण। पनारी = धारा, बहाव।

बिगलित कच कुस कास पुलिन मनो, पंकज कज्जल सारी।
भ्रमर मनौ मति भ्रमत चहूँ दिसि, फिरति है अंग दुखारी।
निसि दिन चकई व्याज बकत मुख, किन मानहुँ अनुहारी।
सूरदास प्रभु जो जमुना-गति सो गति भई हमारी।।४१२।।

सुनियत मुरली देखि लजात।
दूरहि तें सिंहासन बैठे, सीस नाय मुसकात।
सुरभी लिखी चित्र भीतिन पर तिनहिं देखि सकुचात।
मोर पंख को बिजन बिलोकत बहरावत कहि बात।
हमरी चरचा जो कोउ चालत, चालत ही चपि जात।
सूरदास ब्रज भले बिसारयौ, दूध दही क्यो खात ? ।।४१३।।

हरि न मिले, री माई! जन्म ऐसे ही लाग्यो जान।
जोवत मग द्यौस द्यौस बीतत जुग समान।
चातक पिक बयन, सखी! सुनि न परैं कान।
चंदन अरु चंदकिरन कोटिक मनौ भानु।
जुवती सजे भूषन रन-आतुर मनौ त्रान।
भीषम लौं डासे मदन अर्जुन के बान।
सोवति सर-सेज सूर, चल न चपल प्रान।
दक्षिण-रवि-अवधि अटक इतनीए जान।।४१४।।

तुम्हरे बिरह, ब्रजनाथ, अहो पिय! नयनन नदी बढ़ी।
लीने जात निमेष-कूल दोउ एते मान चढ़ी।

---

४१२. कास = तट के कुश-काश मानो बिखरे हुए केश हैं।
४१३. बिजन = बीजन, पंखा। चपि जात = दब जाते हैं।
४१४. त्रान = अंगत्राण कवच।

गोलक-नव-नौका न सकत चलि, स्यो सरकनि बढि बोरति।
ऊरध स्वास-समीर तरंगन तेज तिलक-तरु तोरति।
कज्जल कीच कुचील किए तट अंतर अधर कपोल।
रहे पथिक जो जहां सो तहा थकि हस्त चरन मुख-बोल।
नाहिंन और उपाय रमापति बिन दरसन छन जीजै।
अस्र-सलिल बूडत सब गोकुल सूर सुकर गहि लीजै ॥४१५॥

हमको सपने हू मै सोच।
जा दिन तें बिछुरे नँदनदन ताही दिन को पोच।
मनु गोपाल आए मेरे आगन, हँसि भुजबाह गही।
कहा करौं बैरिनि भइ निँदिया, नैकु न और रही।
ज्यों चकई प्रतिबिब देखिकै आनदी पिय जानि।
सूर, पवन मिस निठर बिधाता चपल करचौ जल आनि ॥४१६॥

कोउ, माई! बरजे या चदहि।
करत है कोप बहुत हम्ह ऊपर, कुमुदिनि करत अनदहि।
कहा कुहू, कहँ रवि अरु तमचुर, कहा बलाहक कारे?
चलत न चपल रहत रथ थकि करि, बिरहिनि के तन जारे।
निदति सैल, उदधि, पन्नग कौ, सापति कमठ कठोरहिं।
देति असीस जरा देवी को, राहु केतु किन जोरहि?

---

४१५ स्यो = सहित। सरकनि = गति या प्रवाह से। तिलक = टीका या तिलक किनारे के पेड हैं (तिलक एक वृक्ष भी है)। कुचील = गदा, मैला। हस्त चरन = ये सब मानो पथिक हैं।

४१६ आनंदी = आनदित हुई।

४१७ बलाहक = बादल। कहाँ कुहू...कारे = इन सबके आने से चद्रमा यातो छिप जाता है या मद हो जाता है। निदति ··कठोरहि = इनकी निदा करती है, क्योकि उस समुद्रमथन में ये सब सहायक हुए थे जिससे चन्द्रमा निकला था। जरा = एक राक्षसी, जिसने जरासंध के दो खड जोडे थे।

ज्यों जलहीन मीन-तन तलफत त्योंहि तपत ब्रजबालहि।
सूरदास प्रभु बेगि मिलावहु मोहन मदन-गोपालहि॥४१७॥

हरि परदेस बहुत दिन लाए।
कारी घटा देखि बादर की नैन नीर भरि आए।
पालागौं तुम्ह, बीर बटाऊ! कौन देस तें आए।
इतनी पतिया मेरी दीजौ जहाँ स्यामघन छाए।
दादुर मोर पपीहा बोलत सोवत मदन जगाए।
सूरदास स्वामी जो बिछुरे प्रीतम भए पराए॥४१८॥

आजु घन स्याम की अनुहारि।
उनै आए सावरे, सखि री! लेहि रूप निहारि।
इंद्रधनुष मनौ पीत बसन छबि, दामिनि दसन बिचारि।
जनु बगपाति माल मोतिन की, चितवत चित्त लेत है हारि।
गरजत गगन, गिरा गोविंद की सुनत नयन भरे बारि।
सूरदास गन सुमिरि स्याम के बिकल भई ब्रजनारि॥४१९॥

ऐसो सुनियत है द्वै सावन।
वहै बात फिर फिर सालति है स्याम कह्यौ है आवन।
तब तौ प्रीति करी, अब लागी अपनौ कीयौ पावन।
यहि दुख सखी निकसि उत जैये जितै सुनै कोउ नावँ न।
एकहि बेर तजी हम्ह, लागे मथुरा नेह बढावन।
सूर सुगति कत होति हमारी, लागी नीकी भावन॥४२०॥

कोकिल! हरि को बोल सुनाव।
मधुबन तें उचटारि स्याम कहँ या ब्रज लै कै आव।
जाचक सरनहि देत सयाने तन मन, धन, सब साज।
सुजस बिकात बचन के बदले क्यों न बिसाहत आज।

---

४२० नीकी = अच्छी या सुंदरी स्त्रियाँ।
४२१ उचटारि = उचाटकर। सरनहि = शरण मे आये याचक को।

कीजै कछु उपकार परायौ यहै सयानौ काज।
सूरदास प्रभु कहु या अवसर बन बन बसंत बिराज ॥४२१॥

भ्रमर-गीत

है कोइ वैसीई अनुहारि।
मधुबन तें न आवत, सखि री! चितौ तु नयन निहारि।
माथ मुकुट, मनोहर कुण्डल, पीत बसन रुचिकारि।
रथ पर बैठि कहत सारथि सो ब्रज तन बाह पसारि।
जानति नाहिं न पहिचानति हौ मन बीते जुग चारि।
सूरदास स्वामी के बिछुरे जैसे मीन बिनु बारि॥४२२॥

कहौ कहा ते आए हौ।
जानति हौ अनुमान मनौ तुम यादवनाथ पठाए हौ।
वैसोइ बरन, बसन पुनि वैसेइ, तन भूषन सजि ल्याए हौ।
सर्बसु लै तब संग सिधारे अब कापर बहिराए हौ।
सुनहु, मधुप! एकै मन सबको सो तौ वहा लै छाए हौ।
मधुबन की मानिनी मनोहर तहँहिं जाहु जहँ भाए हौ।
अब यह कौन सयानप ब्रज पर का कारन उठि धाए हौ।
सूर जहाँ लौ स्यामगात हैं जानि भले करि पाए हौ ॥४२३॥

हमसो कहत कौन की बात?
सुनि! ऊधौ हम समुझत नाहीं फिरि पूछति हैं तातें।
को नृप भयौ कंस किन मारचौ को वसुदेव सुत आहि?
यहा हमारे परम मनोहर जीजतु हैं मुख चाहि।
दिनप्रति जात सहज गोचारन गोपसखा लै संग।
बासरगत रजनीमुख आवत करत नयन गति पंग।

---

४२२ तन = ओर, तरफ।
४२४ चाहि = देखकर। रजनीमुख = सन्ध्या। पंग = स्तब्ध।

को व्यापक पूरन अबिनासी, को बिधि बेद अपार ?
सूर बृथा बकवाद करत हौ; या ब्रज नन्दकुमार ॥४२४॥

गोकुल सबै गोपाल उपासी।
जोग अंग साधत जे ऊधौ ते सब बसत ईसपुर कासी।
यद्यपि हरि हम तजि अनाथ करि तदपि रहति चरननि रस रासी।
अपनी सीतलताहि न छाडत यद्यपि है ससि राहु गरासी।
का अपराध जोग लिखि पठवत प्रेम भजन तजि करत उदासी।
सूरदास ऐसी को बिरहिन मागति मुक्ति तजे गनरासी ? ॥४२५॥

जोग ठगौरी ब्रज न बिकैहै।
यह ब्यौपार तिहारौ ऊधौ ऐसोई फिरि जैहै।
जापै लै आए हौ मधुकर ताके उर न समैहै।
दाख छाडि कै कटुक निंबौरी को अपने मुख खैहै ?
मूरी के पातन के केना को मुक्ताहल देहै।
सूरदास प्रभु गुनहि छाडि कै को निर्गुन निरबैहै ?॥४२६॥

हमरे कौन जोग ब्रत साधै ?
मृगत्वच, भस्म, अधारि, जटा को को इतनौ अवराधै ?
जाकी कहू थाह नहिं पैए अगम, अपार, अगाधै।
गिरिधर लाल छबीले मुख पर इतै बाध को बांधै ?
आसन, पवन भूति मृगछाला ध्याननि को अवराधै ?
सूरदास मानिक परिहरि कै राख गांठि को बाधै ? ॥४२७॥

---

४२५ रासी = रसी या पगी हुई। उदासी = विरक्त।
४२६ ठगौरी = ठगपने का सौदा। निंबौरी = नीम का फल। केना = सौदा; छोटा-मोटा साग मूली आदि का बदला।
४२७. अधारि = साधुओं की टेकने की लकड़ी। बाध = आडबर।

तेरी बुरी न कोऊ मानै।
रस की बात मधुप नीरस, सुनु, रसिक होत सो जानै।
दादुर बसै निकट कमलनि के जन्मन रस पहिंचानै।
अलि अनुराग उडन मन बाध्यौ कहे सुनत नहिं कानै।
सरिता चलै मिलन सागर कौ कूल मूल द्रुम भानै।
कायर बकै, लौह तै भाजै, लरै जो सूर बखानै ॥४२८॥

बरु वै कुब्जा भलौ कियौ।
सुनि सुनि समाचार ऊधौ मो कछुक सिरात हियौ।
जाको गुन, गति, नाम, रूप हरि, हारचौ फिरि न दियौ।
तिन अपनो मन हरत न जान्यौ हँसि हँसि लोग जियौ।
सूर तनक चन्दन चढाय तन ब्रजपति वस्य कियौ।
और सकल नागरि नारिन को दासी दाव लियौ ॥४२९॥

रहु रे, मधुकर! मधुमतवारे।
कहा करौ निर्गुन लैकै हौ जीवहु कान्ह हमारे।
लोटत नीच परागपक मै पचत, न आपु सम्हारे।
बारम्बार सरक मदिरा की अपरस कहा उघारे।
तुम जानत हमहू वैसी है जैसे कुसुम तिहारे।
घरी पहर सबकौ बिलमावत जेते आवत कारे।
सुन्दरस्याम कमलदल-लोचन जसुमति नन्ददुलारे।
सूरस्याम को सर्वस अर्प्यौ अब कापै हम लेहिं उधारे ॥४३०॥

काहे को रोकत मारग सूधौ?
सुनहु, मधुप! निर्गुन-कटक तैं राजपन्थ क्यौं रूधौ?।

---

४२८ भानै = तोड़ती है। लौह = लोहा, हथियार।
४३० सरक = मद्यपात्र। अपरस = विरस, रसहीन। उधारे = उधार मे, उधार, कर्ज़।
४३१ रूँधौ = रोकते हो, छेकते हो।

क तुम सिखै पठाए कुब्जा, क कही स्यामघन न ...
बेद पुरान सुमति सब ढूँढ़ा जुवतिन जोग कहूँ ...
ताकौ कहा परेखो कीजै जानत छाछ न दूधौ।
सूर सूर अक्रूर गए लै ब्याज निबेरत ऊधौ।।४३१।।

निर्गुन कौन देश कौ बासी?
मधुकर! हँसि समझाय, सौह दै बूझति सांच, न हाँसी।
को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि, को दासी?
कैसो बरन भेस है कैसो वहि रस मे अभिलासी।
पावैगो पुनि कियो आपनौ जो रे! कहैगो गाँसी।
सुनत मौन ह्वै रह्यौ ठग्यौ सो सूर सबै मति नासी।।४३२।।

नाहिंन रह्यो मन मे ठौर।
नंदनंदन अछत कैसे आनिए उर और?
चलत, चितवन, दिवस जागत, सपन सोवत राति।
हृदय तें वह स्याम मूरति छन न इत उत जाति।
कहत कथा अनेक ऊधौ लोकलाभ दिखाय।
कहा करौं तन प्रेम-पूरन घट न सिंधु समाय?
स्यामगात सरोज आनन ललित अति मृदुहास।
सूर ऐसे रूप कारन मरत लोचन प्यास।।४३३।।

तौ हम मानैं बात तुम्हारी।
अपनो ब्रह्म दिखावहु, ऊधो! मुकुट-पितांबरधारी।
भजिहैं तब ताको सब गोपी सहि रहिहैं बरु गारी।
भूत समान बतावत हमको जारहु स्याम बिसारी।
जे मुख सदा सुधा अँचवत है ते बिष क्यो अधिकारी?
सूरदास प्रभु एक अंग पर रीझि रही ब्रजनारी।।४३४।।

---

४३१ परेखा = विश्वास। निबेरत = निबटाते है, वसूल करते है।
४३२ गाँसी = गाँस या कपट की बात, चुभनेवाली बात।

बिन गोपाल बैरन भई कुंजैं।
तब ये लता लगति अति सीतल, अब भईं बिषम ज्वाल की पुंजैं।
बृथा बहति जमुना, खग बोलत, बृथा कमल फूलैं, अलि गुंजैं।
पवन पानि घनसार सजीवनि दधिसुत किरन भानु भईं भुंजैं।
ए, ऊधो, कहियो माधव सों बिरह कदन करि मारत लुंजैं।
सूरदास प्रभु को मग जोवत अँखिया भईं बरन ज्यों गुंजैं ॥४३५॥

सँदेसनि मधुबन कूप भरे।
जे कोइ पथिक गए हैं ह्यां तैं फिर नहिं गवन करे।
कै वै स्याम सिखाय समोधे कै वै बीच मरे?
अपने नहिं पठवत नँदनंदन हमरेउ फेरि धरे।
मसि खूटी, कागर जल भीजैं, सर दौ लागि जरे।
पाती लिखैं कहो क्यों करि जो पलक कपाट अरे? ॥४३६॥

ऊधो ब्रज की दसा बिचारौ।
ता पीछे यह सिद्धि आपनी जोगकथा बिस्तारौ।
जेहि कारन पठए नँदनदन सो सोचहु मन माहीं।
केतिक बीच बिरह परमारथ जानत हौ किधौं नाहीं।
तुम निज दास जो सखा स्याम के सतत निकट रहत हौ।
जल बूडत अवलब फेन को फिरि फिरि कहा गहत हौ?
वै अति ललित मनोहर आनन कैसे मनहिं बिसारौं।
योग युक्ति औ मुक्ति बिबिध बिधि वा मुरली पर वारौं।

---

४३५ दधिसुत = उदधिसुत, चद्रमा। भुंजैं = भूनती हैं। कदन = छुरी। बरन = वर्ण, रग। गुंजैं = गुजा, घुंघची।

४३६. समोधे = समझा-बुझा दिया। खूँटी = चुक गई। दौ = दावाग्नि, आग।

४३७. निज = खास।

जेहि उर बसे स्यामसुंदर घन क्यों निर्गुन कहि आवै।
सूरस्याम सोइ भजन बहावै जाहि दूसरो भावै ॥४३७॥

ऊधो ! जोग बिसरि जनि जाहु।
बाधहु गाठि कहूँ जनि छूटै फिरि पाछे पछिताहु।
ऐसी बस्तु अनूपम मधुकर मरम न जानै और।
ब्रजबासिन के नाहिं काम की तुम्हरे ही है ठौर।
जो हरि हित करि हमको पठयो सो हम तुमको दीन्ही।
सूरदास नरियर ज्यों बिष को करै बन्दना कीन्ही ॥४३८॥

ऊधो प्रीति न मरन बिचारै।
प्रीति पतंग जरै पावक परि, जरत अंग नहिं टारै।
प्रीति परेवा उड़त गगन चढ़ि गिरत न आप सम्हारै।
प्रीति मधुप केतकी कुसुम बसि कण्टक आपु प्रहारै।
प्रीति जानु जैसे पय पानी जानि अपनपो जारै।
प्रीति कुरंग नादरस लुब्धक तानि तानि सर मारै।
प्रीति जान जननी सुत-कारन को न अपनपो हारै ?
सूरस्याम सो प्रीति गोपिन की कहु कैसे निरवारै ॥४३९॥

ऊधो जुवतिन ओर निहारौ।
तब यह जोग-मोट हम आगे हिये समुझि बिस्तारौ।
जे कच स्याम आपने कर करि नितहि सुगन्ध रचाए।
तिनको तुम जो बिभूति घोरि कै जटा लगावन आए।
जेहि मुख मृगमद मलयज उबटति, छन छन धोवति मांजति।
तेहि मुख कहत खेह लपटावन सो कैसे हम छाजति ?
लोचन आजि स्याम-ससि दरसति तबही ये तृप्ताति।
सूर तिन्हैं तुम रबि दरसावत यह सुनि सुनि करुआति ॥४४०॥

---

४३९ अपनपो = अपनापन, आत्मभाव।
४४० करुआति = दुखती हैं।

संदेसो देवकी सों कहियो।
हौं तो धाय तिहारे सुत की कृपा करत ही रहियो।
उबटन तेल और तातो जल देखत ही भजि जाते।
जोइ जोइ मागत सोइ सोइ देती करम करम करि न्हाते।
तुम तौ टेव जानतिहि ह्वैहौ तऊ मोहिं कहि आवै।
प्रात उठत मेरे लाल लडैतेहि माखन रोटी भावै।
अब यह सूर मोहिं निसि बासर बडो रहत जिय सोच।
अब मेरे अलकलडैतै लालन ह्वैहै करत सँकोच ॥४४१॥

[illegible] मन समुझावन लाग।
सूल होत नवनीत देखिकै मोहन के मुख जोग।
प्रात समय उठि माखन रोटी को बिन मागे दैहै।
को मेरे बालक कुँवरकान्ह को छन छन आगो लैहै?
कहियो जाय पथिक घर आवैं राम स्याम दोउ भैया।
सूर वहा कत होत दुखारी जिनके मो सी मैया ॥४४२॥

ऊधो! जो हरि हितू तिहारे।
तौ तुम कहियो जाय कृपाकै जे दुख सबै हमारे।
तन तरुवर ज्यो जरति बिरहिनी, तुम दव ज्यो हम्ह जारे।
नहिं सिरात, नहिं जरत छार ह्वै सुलगि सुलगि भए कारे।
जद्यपि उमगि प्रेमजल भिजवत बरषि बरषि घनतारे।
जौ सींच यहि भांति जतन करि तौ इतने प्रतिपारे।
कीर, कपोत, कोकिला, खजन बधिक-बियोग बिडारे।
इन दुखन क्यो जियहिं सूरप्रभु ब्रज के लोग बिचारे? ॥४४३॥

---

४४१ धाय = धात्री, दाई। अलकलडेतै = दुलारे, लाडले।
४४३ सिरात = ठढी होती है। घनतारे = आँख की पुतलीरूपी बादल।

ऊधौ, तालागौं भले आए।
तुम देखे जनु माधव देखे, तुम त्रैताप नसाए।
नंद जसोदा नातौ टूटौ वेद पुरानन गाए।
हम अहीरि, तुम अहिर नाम तजि निर्गुन नाम लखाए।
सब यहि घोष खेल बहु खेले ऊखल भुजा बँधाए।
सूरदास प्रभु यहै सूल जिय बहुरि न चरन दिखाए ॥४४॥

मधुकर काके मीत भए ?
दिवस चारि की प्रीति सगाई सो लै अनत गए।
डहकत फिरत आपने स्वारथ पाखँड और ठये।
चाडै सरे तिन्हारी मेटी, करत है प्रीति न ये।
चितहि उचाटि मेटि गए रावल मन हरि हरिजु लये।
सूरदास प्रभु दुत-धरम तजि विष के बीज बये ॥४५॥

मधुकर, कान्ह कहीं तांहि हांहीं।
कीधौं नई सखी सिखई है निज अनुराग बरोही।
सचि राखी कुबरी पीठि पै य बातें चकचोही।
स्याम सुगाहक पाय, सखी री, छार दिखायो मोही।
नागरमनि जे सोभा-सागर जग जवती हँसि माही।
लियो रूप, दै ज्ञान ठगौरी, भलो ठग्यो ठग वोही।
है निर्गुन सरवरि कुबरी अब घटी करी हम जोही।
सूर सो नागरि जोग दीन जिन तिनहिं आज सब सोही ॥४६॥

---

४५ चाडै सरे = मन की हौस निकल जाने पर, अपनी इच्छा पूरी हो जाने पर। रावल = महल, राजभवन।

४६ बरोही = बल से। चकचोही = चुहल की। लियो रूप = रूप ले लिया, निराकार कर दिया; बदले मे ठगकर ज्ञान दे दिया।

आगामी २०० पुस्तकें

नीचे लिखी २०० पुस्तकें शीघ्र ही छप रही हैं। ये हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ विद्वानों-द्वारा लिखाई गई हैं। आप भी इनमें से अपनी रुचि की पुस्तकें अभी से चुन रखिए और अपने चुनाव से हमें सूचित भी करने की कृपा कीजिए।

विचार-धारा

मानव-संबंधी

(१) जीवन का आनन्द
(२) ज्ञान और कर्म
(३) मेरे अन्त समय के विचार
(४) मनुष्य के अधिकार
(५) प्राच्य और पाश्चात्य समस्या
(६) मानव-धर्म
(७) जातियों का विकास
(८) विश्व-प्रहेलिका

समाज-संबंधी

(१) संस्कृति और सभ्यता का विकास
(२) विवाह-प्रथा, प्राचीन और आधुनिक
(३) सामाजिक आन्दोलन
(४) धर्म का इतिहास
(५) नारी
(६) दरिद्र का क्रन्दन

राजनीति-संबंधी

(१) समाजवाद
(२) चीन का स्वातन्त्र्य-प्रयत्न
(३) राष्ट्रों का संघर्ष
(४) स्वाधीनता और आधुनिक युग
(५) युवक का स्वप्न
(६) योरपीय महायुद्ध
(७) मूल्य, दर और लाभ

विश्व-उपन्यास

(१) तावीज़
(२) आना केरेनिना
(३) मिलिमोना
(४) डा० जेकिल और मि० हाइड
(५) पम्पियाई के अन्तिम दिन
(६) अमर नारी
(७) काला फूल
(८) चार सवार
(९) रेबेका
(१०) केबिन कूपर फौलड
(११) ज़ेन्डा का कैदी
(१२) बेनहुर
(१३) कोवेडिस
(१४) रोमियो-जूलियट
(१५) दो नगरों की कहानी
(१६) टैस
(१७) रहस्यमयी

आधुनिक उपन्यास

(१) चुनारगढ़
(२) विषादिनी

(३) कालरात्रि
(४) मुक्ति
(५) यादगार
(६) बादशाही
(७) दाना-पानी
(८) विप्लव
(९) जवानी निशानी
(१०) ग्रहचक्र
(११) कजरी
(१२) जयमाला
(१३) [illegible]
(१४) [illegible]
(१५) [illegible] (नाटक)
(१६) [illegible]
(१७) आलमगीर
(१८) नर्णार्जुन

रहस्य-रोमांच

(१) ताज का रहस्य
(२) शैतान
(३) धन का मोह
(४) कोशलगढ़ का कप्तान
(५) पहाड़ी फूल
(६) अन्तिम परिणाम
(७) अद्भुत जाल
(८) मृत्यु का व्यापारी
(९) यौवनाशखा
(१०) विद्रोही
(११) छिपा खजाना
(१२) गर्विता
(१३) चेतावनी
(१४) देश के लिए
(१५) दोस्त
(१६) चाँदी की कुंजी
(१७) आदर्श युवक
(१८) हुल्लड़
(१९) शैतान डाक्टर
(२०) प्रतिशोध
(२१) अन्याय का अन्त
(२२) प्रोफेसर [illegible]
(२३) वज्राघात
(२४) समय का फेर
(२५) डाक्टर कोठारी का शोध
(२६) चीन का जादू
(२७) नीला चश्मा
(२८) हार
(२९) अफरीदी डाकू
(३०) खतरे की राह
(३१) मकड़ी का जाला
(३२) अदृश्य आदमी
(३३) साहस का पहाड़
(३४) अंधेरखाता
(३५) कंकन का चोर
(३६) अपूर्व सुन्दरी
(३७) लौह लेखनी
(३८) गुप-चुप
(३९) लाल लिफाफा
(४०) कल की डाक

कहानी-संग्रह

('क' विभाग)—विदेशी भाषाओं की चुनी हुई कहानियाँ—५ भाग

('अ' विभाग)—लेखकों की अपनी चुनी हुई कहानियाँ—५ भाग

('ग' विभाग)—विभिन्न विषयों पर चुनी हुई कहानियाँ—५ भाग

('घ' विभाग)—भारतीय भाषाओं की चुनी हुई कहानियाँ—६ भाग

विज्ञान

(१) स्वास्थ्य और रोग
(२) जानवरों की दुनिया
(३) आकाश की कथा
(४) समुद्र की कथा
(५) खाद-विज्ञान
(६) मनुष्य की उत्पत्ति
(७) प्राकृतिक चिकित्सा
(८) विज्ञान का व्यावहारिक रूप
(९) प्रकृति की विचित्रतायें
(१०) वायु पर विजय
(११) विज्ञान के चमत्कार
(१२) विचित्र जगत्
(१३) आधुनिक आविष्कार

हिन्दी-साहित्य

अमर साहित्य

(१) वैष्णवपदावली
(२) मीरा के पद
(३) गीति-संग्रह
(४) हिन्दी की सूफी कविता
(५) प्रेममार्गी रसखान और घनानन्द
(६) सन्तों की वाणी
(७) सूरदास
(८) तुलसीदास
(९) कबीरदास
(१०) बिहारी
(११) पद्माकर
(१२) श्री भारतेन्दु

साहित्य-विवेचन-निबंध-संग्रह, इत्यादि

(१) हिन्दी-साहित्य में नूतन प्रवृत्तियाँ
(२) हिन्दी-कविता में नारी
(३) हिन्दी के उपन्यास
(४) हिन्दी में हास्य-रस
(५) हिन्दी के पत्र और पत्रकार
(६) हिन्दी का वीर-काव्य
(७) नवीन कविता, किधर ?
(८) व्रजभाषा की देन
(९) हिन्दी के निर्माता (द्वितीय भाग)
(१०) बालकृष्ण भट्ट
(११) बालमुकुन्द गुप्त
(१२) महावीरप्रसाद द्विवेदी
(१३) बाबू श्यामसुन्दरदास

धर्म

(१) गीता (शङ्करभाष्य)
(२) „ (रामानुजभाष्य)
(३) „ (मधुसूदनी टीका)
(४) „ (शङ्करानन्दी टीका)
(५) „ (केशव काश्मीरी की टीका)
(६) योगवाशिष्ठ (११ मुख्य आख्यान)

(७) सरल उपनिषद् (ईश, केन, कठ, मुंडक, प्रश्न, ऐतरेय, तैत्तिरीय, श्वेताश्वतर आदि) २ भाग
(८) पुराण (समस्त पुराणों के चुने हुए शिक्षाप्रद और मनोरंजक कथानक)
(९) महाभारत के निम्नांकित अंश
क–(विदुरनीति)
ख–(सनक सुजाताय)
ग–(नारायणीय उपाख्यान)
घ–(श्रीकृष्ण के समस्त उपाख्यान)
ङ–(वन, शान्ति और अनुशासन-पर्व के आख्यान)
(१०) पातञ्जल योगदर्शन (व्यास भाष्य)
(११) तंत्र सर्वस्व
(१२) पौराणिक सतीं के चरित्र
(१३) उत्तर भारत के मध्यकालीन संत
(१४) दक्षिण-भारत के संत
(१५) आधुनिक संतों की जीवनी (श्री अरविन्द, रमण महर्षि, विवेकानन्द, उड़िया बाबा आदि)
(१६) पतिव्रताओं और सतियों के चरित्र

ऐतिहासिक विचित्र कथा

(१) भारत का प्राचीन गौरव
(२) प्राचीन मिस्र का रहस्य
(३) प्राचीन ग्रीक की सभ्यता
(४) मृत्युलोक की झांकी
(५) अमेरिका का स्वाधीनता युद्ध
(६) फ्रान्स की राजक्रांति
(७) रोमनसाम्राज्य का पतन
(८) क्रांति की विभीषिका
(९) रोम के महापुरुष
(१०) इत्सिंग का भारत-भ्रमण
(११) ध्रुव प्रदेश की खोज मे
(१२) प्राचीन तिब्बत
(१३) सहारा की विचित्र बातें
(१४) मरहठों का उदय और अस्त
(१५) सिक्खों का उत्थान और पतन
(१६) भारत के पूर्वी उपनिवेश
(१७) मुगलसाम्राज्य मे भ्रमण
(१८) मुगलों का दरबार
(१९) लखनऊ की शाहजादियाँ
(२०) विदेशी यात्रियों का भारत-वर्णन
(२१) नरभक्षकों के देश में--
(२२) पशुओं, मानवों और देवों में--

जीवन-चरित्र

(१) नेपोलियन बोनापार्ट
(२) लेनिन
(३) भारतीय राजनीति के स्तम्भ (१)
(४) तुर्की का पिता कमाल
(५) मेजिनी—इटली का वीर
(६) सन-यात-सेन---चीन का नायक
(७) एब्राहिम लिंकन–अमेरिका का